प्राणायाम

कला और विज्ञान

डा एच आर नागेन्द्र

SVYP
प्रज्ञानं ब्रह्म
SWAMI VIVEKANANDA YOGA PRAKASHANA
BANGALORE, INDIA

प्राणायाम

कला और विज्ञान

एच आर नागेन्द्र एम. ई. पीएच. डी.

स्वामि विवेकानन्द योग प्रकाशन
बेंगलोर

PRANAYAMA - KALA AUR VIGNAN, a collection of articles authored by **Dr H R Nagendra** in English translated to Hindi by Amruta Bharati, PP-122, 1/8 Demy, PB, Price Rs. 65, Second Edition Printed at Rashtrotthana Mudranalaya, Chamarjapet, Bangalore-19. Published by Swami Vivekananda Yoga Prakashana, No. 9, Vivek Kuteer, Appajjappa Agrahara, Chamarajpet, Bangalore - 560 018.

© : Revised

प्रथम मुद्रण: गुरूपूर्णिमा, जुलै, १९९८ १,००० प्रतियाँ

द्वितीय मुद्रण : विनायक चतुर्ति, सितंबर, १९९९ २,००० प्रतियाँ

पुनर् मुद्रण : अक्टोबर २००६, २,००० प्रतियाँ

Price : Rs. 65/- (India)

प्रकाशन : स्वामि विवेकानन्द योग प्रकाशन
नं.9, विवेक कुटीर, अप्पाजप्प अग्रहारा, चामराजपेट, बेंगलोर-560 018
दूरभाषा : 26612669 फैक्स्: 26608645
svyasablr@yahoo.com website: www. vyasa.org

मुद्रक : राष्ट्रोत्थान मुद्रणालय, केंपेगौड नगर, बेंगलोर-560 019.
दूरभाषा : 26612730

ISBN 81-87313-01-3

प्रकाशकीय निवेदन

प्राणायाम योग अभ्यास का अत्यंत आवश्यक अंग है । शुद्धीकरण और समत्व के द्वारा "जीवनाधार प्राणशक्ति" पर नियंत्रण पाने का विज्ञान ही प्राणायाम है । आजकल प्राणायाम का अर्थ केवल साँस की निय्त्रंण और अनुसरण मात्र होगया है । इस तरह प्राणायाम परिपूर्ण सहजार्थ से विमुख वैंज्ञानिक प्रस्तुति और आजकल की संशोधन का विश्लेषण है । बीस बरसों की निरंतर प्रयोगों से तयार किया गया "रियाज़" का विवरण भी यहाँ है । 'प्राणायाम' का वैज्ञानिक विश्लेषण को योगविज्ञानि डा.एच.आर. नागेन्द्र ने अत्यंत रोचक रूप से किया है ।

मूल अंग्रेजि में "Pranayam, The Art And Science" नाम में अत्यन्त जनप्रिय रहा है । इस किताब की हिन्दी अनुवाद के लिये बहुत माँग थी । यह नेक काम श्रीमति अमृत भारतीजी ने किया है । आकर्शक रक्षाकवच विन्यास और सुन्दर मुद्रण दोनों कामों को हमारे केन्द्र के अभिमानि श्री राघवेंद्र राव्, समृद्धा आफसेट् प्रिन्टर्स, चामराजपेट्-18. - इन्होने करके दिया है । रक्षाकवच का वर्णचित्र मशहूर युव छायाग्राहक के.ए. सूरि की कृपा है । इन सब सज्जनों को हमारा धन्यवाद ।

द्वितीय मुद्रण
विनायक चतुर्ति
प्रमाथि नाम संवासर - १९९९ **प्रकाशक.**

अनुवादक का वक्तव्य

यह पुस्तक मनीषी लेखक द्वारा प्राण, प्राणविद्या और प्राणायाम के शास्त्रीय अध्ययन एवं वैज्ञानिक विश्लेषण का प्रस्तुतीकरण है। यह **प्राणानुसंधान** है, प्राण की व्यापकता में किये जानेवाले 'तपस्' का एक छोटा-सा उपक्रम, जो अभ्यास, प्रयोग और अनुभव के माध्यम से मनुष्य को शारीरिक निरामयता और आध्यात्मिक शान्ति का आधार प्रदान करता है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि 'विवेकानन्द केन्द्र योग अनुसंधान संस्थान' योग की सभी प्रणालियों में 'वसिष्ठ शाखा' की मृदुता, मन्थरता, प्रयत्न-शिथिलता एवं प्राण-मन की निस्पन्द प्रशमनता को विशेष स्थान देता है और अपने सभी अनुसंधानों एवं अभ्यासों में इसे मूल सिद्धान्त या केन्द्रबिन्दु के रूप में स्वीकार करता है। योग-चिकित्सा से लेकर योगोत्कर्ष (अध्यात्मसिद्धि) तक इन प्रशमनकारी प्रणालियों की शक्ति और प्रभाव को देखा जा सकता है।

भाषान्तर का कार्य मेरे लिए एक अनुभव रहा है—विशिष्ट विद्या की जानकारी के रूप में एवं लोकोपकारी भाव के उन स्पंदनों के रूप में, जो लेखक के हैं और कृति के हर शब्द के भी। इस पुस्तक को 'योग-आग्रह' के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, एक ऐसे अनुरोध के रूप में, जो बिना किसी आरोपण या दबाव के जीवन को पूर्णता और प्रकाश की ओर प्रेरित करता है।

अनुवाद के बारे में इतना कहना पर्याप्त है कि शब्दों का चुनाव अर्थ की अभिव्यंजकता को ध्यान में रखकर किया गया है। शब्द कुछ कठिन हो सकते हैं, पर बार-बार के प्रयोग से वे जल्दी ही सरल और सुग्राह्य लगने लगते हैं। पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद के लिए स्वीकृत शब्दावली का प्रयोग किया गया है, पाठकों की सुविधा के लिए उसकी सूची अंत में दे दी गयी है।

'योग, योग का आधार और उसके प्रयोग' की भांति ही यह पुस्तक भी हिन्दी पाठकों के बीच अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकेगी, मुझे विश्वास है।

मेरी कृतज्ञता . . .

—अमृता

प्रस्तावना

चिन्ता और तनावों से घिरा हुआ आज का जीवन प्रभावित लोगों को निरन्तर रौंदने में लगा हुआ है। बढ़ती हुई मौतें और घटता हुआ जीवन-स्तर—आज मनुष्य इनके बीच है। भौतिक जगत् के गति-विज्ञान और उसकी संरचना को समझने के बावजूद अन्तर-जगत् की खोज अभी बाकी है। प्रौद्योगिकी ने विकास किया है और रहन-सहन के भौतिक स्तर में बहुत अधिक वृद्धि हुई है, पर वास्तविक जीवन-स्तर को प्रेम, आनंद और शांति के रूप में अभी अपनी जड़ें तलाशनी हैं, अभी अपना अर्थ ढूंढ़ना है। योग और आध्यात्मिकता में संपूर्ण विश्व की संरचना का ज्ञान निहित है, उन रहस्यों की जानकारी है जो विश्व-विधान के नियमों से जुड़े हैं। **योग** आज के मनुष्य के लिए जीवन का एक विलक्षण मार्ग, उपाय और आचरण प्रस्तुत करता है।

मनस्-भौतिक के बीच का सम्बन्ध सदियों से मनुष्य के लिए अत्यंत कुतूहल, सोच-विचार और जिज्ञासा का विषय रहा है और एक चुनौती भी। यह चुनौती आज के वैज्ञानिक के लिए बहुत अधिक प्रासंगिक हो गयी है क्योंकि उसने अपने चारों ओर के भौतिक जगत् के बारे में काफी कुछ समझ लिया है और अब वह जगत् के सूक्ष्मतर आयामों की तरफ बढ़ रहा है। भौतिकता पर आधारित अपनी पहुंच से परे अब वह कुछ नया खोजने की दिशा में अग्रसर हो रहा है। संसार के महान् वैज्ञानिक अज्ञात की अपनी खोज में जहां इस भौतिक परिदर्शन में किसी बड़े समाधान के लिए कठिन प्रयास कर रहे हैं, वहीं अनेक वैज्ञानिकों ने नयी और गहरी अंतर्दृष्टि के लिए पूरब की उपलब्धियों की ओर देखना आरम्भ कर दिया है।

वेद भारतीय संस्कृति का मूल आधार हैं, द्रष्टा-निर्माता हैं। और उपनिषदों में, जो वेदों का सारतत्त्व हैं, इस मूलभूत मनस्-भौतिक समस्या का गहन चिंतन है। मनस् तत्त्व और भौतिक तत्त्व पर उन्होंने व्यापक विचार किया है। तपस् अथवा प्रयोग और परीक्षण के द्वारा उन्होंने पाया है कि यह 'प्राण' नाम की सत्ता है अर्थात् मूल जीवनतत्त्व, जो मन और भौतिक तत्त्व के बीच सेतु का कार्य करता है। **प्रश्नोपनिषद्** में, प्राण को एक ऐसी आधारभूत सत्ता के रूप में परिभाषित किया गया है, जिससे संपूर्ण विश्व का निर्माण हुआ है। यह **प्राण** मानव-तंत्र में प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान आदि पंच उपप्राणों के रूप में विभक्त होकर रहता है और इस देह को विघटित नहीं होने देता। उपनिषद् इसे वरिष्ठ प्राण की संज्ञा देता है जो सारे विश्व का आधार है—धुरी है—**अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्**।

भौतिक तत्त्व प्राण का स्थूलतम रूप या प्राकट्य है जब कि मन एक सूक्ष्म आविर्भाव। इसी प्रकार चेतना की उच्चतर स्थितियां प्राण की और भी सूक्ष्म अभिव्यक्तियां हैं।

पतंजलि ने अपने **योगसूत्र** में प्राणायाम को एक ऐसा विज्ञान माना है जो श्वास के संयोजन से प्राण पर और साथ ही मन पर नियंत्रण करने की विधि प्रदान करता है। प्राणायाम अष्टांग योग का चौथा अंग है और उपनिषदों में उपलब्ध प्राण और प्राणविद्या की व्यापक व्याख्या को ही आंशिक रूप से प्रस्तुत करता है। प्राणायाम का अर्थ है प्राणशक्ति का नियंत्रण, प्रलम्बन, दीर्घता, विस्तार और व्यापकता।

इस छोटी-सी पुस्तक में उन सिद्धांतों का विवरण है जो उपनिषदों और योग-ग्रंथों में वर्णित प्राण की अवधारणा पर प्रकाश डालते हैं। प्राणायाम की जो प्रणालियां इस पुस्तक में प्रस्तुत की गयी हैं, वे सर्वांगीण तो नहीं हैं पर निश्चय ही वे वह अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं जो श्वास के नियोजन द्वारा प्राण पर संयम प्राप्त करने के रहस्यों को उद्घाटित करती हैं।

इस पुस्तक के अलग-अलग अध्यायों में प्राणायाम की मुख्य प्रणालियों को प्रस्तुत किया गया है जिनमें से कुछ प्रणालियां श्वसन-क्षेत्रों को स्वच्छ करने, श्वसन-तंत्र के प्रकार्यों में स्वाभाविकता लाने, प्राण की सूक्ष्म सरणियों को शुद्ध करने, प्राणमय कोश में सन्तुलन स्थापित करने और प्राण के नियंत्रण के लिए गहनतर और सूक्ष्मतर अंतर्दृष्टि प्राप्त करने से जुड़ी हैं। हमारे अस्तित्व को संयोजित करने में इन प्रणालियों की जो सक्रिय एवं शक्तिशाली भूमिका है, उसे समुचित रूप से स्पष्ट किया गया है। इन प्रणालियों के लाभ एवं इनकी सीमाओं को पूर्वोपायों के साथ प्रस्तुत किया गया है ताकि अभ्यास के दौरान किसी भी प्रकार की असावधानी न हो। और अंत में, दैनिक अभ्यास-क्रम का परामर्श दिया गया है।

विवेकानंद केन्द्र के प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा देश भर में आयोजित योग-शिविरों एवं गैर-आवासीय शिक्षण-क्रमों में इन अभ्यासों के लाभ और इनकी निरापदता का पिछले पन्द्रह वर्षों में परीक्षण कर लिया गया है। यह पुस्तक विशेष रूप से उनके लिए है जिन्होंने हमारे शिक्षण-क्रमों में प्राणायाम की इन प्रणालियों को सीखा है और जो अपने अभ्यासों को जारी रखते हुए आगे और प्रगति करना चाहते हैं। इस पुस्तक के द्वारा हमारा यह अभिप्राय भी रहा है कि उन नये छात्रों के लिए भी यह मार्गदर्शन का काम कर सके जो योग एवं प्राणायाम की प्रणालियों को सीखना, उनमें अग्रसर होना चाहते हैं। यह सत्य है कि प्राणायाम श्रेयस्-प्राप्ति का एक शक्तिशाली माध्यम है, पर उसके कुछ खतरे भी हैं। उनके बचाव के लिए पुस्तक के आरंभ में दिये गये विधि-निषेधों एवं पूर्वोपायों का पालन करना अत्यंत आवश्यक है। . . .

इस पुस्तक का पहला अध्याय **सत्य की खोज** पर प्रकाश डालता है—इस दिशा में हुई अबतक की वैज्ञानिक उपलब्धियों पर एवं भविष्य की संभावनाओं पर; और आगे के अध्यायों में प्राण की पूर्ण अवधारणा एवं परिभाषा, मनुष्य के प्रत्यक्ष और परोक्ष आयाम, शरीर और मन के बीच का सेतु-बन्ध, तथा प्राणायाम विद्या और विज्ञान को शास्त्रीय एवं

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। **अभिज्ञा का विस्तार, लय और प्राणानुसंधान** ऐसे शीर्षक हैं जो संत्रस्त मानव-जीवन को आनन्द और शांति का प्रकाश दे सकते हैं।

अंत में, मैं उन सभी के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं जो किसी भी रूप में इस पुस्तक के लिखे जाने या इसके प्रस्तुतीकरण से जुड़े रहे हैं।

जिज्ञासु पाठकों के सुझावों का मैं स्वागत करता हूं।

—लेखक

विषय-क्रम

अनुवादक का वक्तव्य
प्रस्तावना
सामान्य निर्देश और पूर्वोपाय

अध्याय १
सत्य की खोज १५
संरचना
न्यूटन के नियम
अनिश्चितता सिद्धान्त

अध्याय २
सृष्टि का मूल संरचक तत्त्व १९
प्राण तत्त्व
ऊर्जा स्पेक्ट्रम
प्राण का स्पेक्ट्रम
चेतना के स्तर
प्राण और विश्व-अभिव्यक्ति

अध्याय ३
मानव प्राणियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष आयाम २९
किर्लियान आविष्कार
कोरोना क्षेत्र की अन्योन्य क्रियाएं
प्राणमय कोश
वरिष्ठ एवं पञ्चप्राण
उपप्राण
प्राणायाम और प्राणायाम की विशद अवधारणा

अध्याय ४

शरीर और मन का सेतुबन्ध

सूक्ष्म और स्थूल के बीच की कड़ी

शरीर-मन संयोजन

पारम्परिक प्राणायाम

स्वैच्छिक का अनैच्छिक के साथ सेतुबन्ध

स्वैच्छिक से अनैच्छिक तक

श्वसन तंत्र

श्वसन मार्ग : शारीरिक अवयव

१. नासिका

नासिका के कार्य

२. ग्रसनी

३. कंठ

४. सांस की नली

५. श्वसनी

६. फेफड़े

७. कूपिका या वायु कोश

८. फुप्फुसावरण

शरीर क्रिया सम्बन्धी पक्ष (श्वास का यंत्र विज्ञान)

१. मध्य पट

२. अंतरापर्शुक पेशियां

३. गरदन की पेशियां

श्वसन नियंत्रण

१. तंत्रिका नियंत्रण

२. रासायनिक नियंत्रण

क्रियाएं

षट् क्रियाएं

शुद्धिकरण : कपालभाति

कपालभाति के अन्य प्रकार

कपालभाति (१)

एक नासाछिद्र की कपालभाति (२)

अ. चन्द्रानुलोम विलोम कपालभाति

ब. सूर्यानुलोम विलोम कपालभाति

सूर्य और चन्द्रभेदन कपालभाति (३)

अ. चन्द्रभेदन कपालभाति

ब. सूर्यभेदन कपालभाति

अध्याय ५
श्वास की क्षिप्रता, सामान्य गति और मन्थरता ६१
अधम श्वास
मध्यम श्वास
आद्य श्वास
पूर्ण श्वास
भस्त्रिका प्राणायाम
भस्त्रिका और कपालभाति
शरीरक्रियात्मक पक्ष

अध्याय ६
ख़तरों से बचाव : निरापद पथ ७१
श्वसन के तीन घटक
हठयोग शाखा
हठयोग शाखा के ख़तरे
जालन्धर बन्ध (घंटी रोध)
मूल बन्ध (गुदा रोध)
उड्डीयान बन्ध (उदर रोध)
त्रिबन्ध प्राणायाम
वसिष्ठ शाखा

अध्याय ७
प्राणमय शरीर : संरचना और संतुलन ८१
भौतिक और प्राणिक शरीर का रचना-विज्ञान
अपचयक और उपचयक प्रक्रियाएं
अनुलोम विलोम प्राणायाम
१. दोनों नासाछिद्र
दीर्घ श्वसन या सुख प्राणायाम
२. एक नासाछिद्र
अ. चन्द्रानुलोम विलोम प्राणायाम
ब. सूर्यानुलोम विलोम प्राणायाम
३. एकान्तर नासाछिद्र
अ. चन्द्रभेदन
ब. सूर्यभेदन
स. नाड़ीशुद्धि

अध्याय ८
अभिज्ञा का विस्तार ९३
सावधानता या बिन्दु अभिज्ञा
अनुरेखीय अभिज्ञा
सतही अभिज्ञा
त्रि-विमीय अभिज्ञा
उज्जायी प्राणायाम
शीतलीकरण प्राणायाम
१. शीतली
२. सीत्कार
३. सदन्त
विभेदी वाष्पीकरण का सिद्धान्त
तीन प्राणायामों में वायु का प्रवाह
शीतलीकरण प्राणायाम के अन्य प्रभेद

अध्याय ९
लय १०३
भ्रामरी
अनुनाद—भ्रामरी का आधार
भ्रमरी एवं भ्रमर-ध्वनियां
भ्रामरी में अवस्थाएं
मूर्च्छा प्राणायाम

अध्याय १०
प्राणानुसंधान १११
अभिज्ञा-अभ्यास
प्रगति के चिह्न

पारिभाषिक शब्द-क्रम ११७

सामान्य निर्देश और पूर्वोपाय

प्राणायाम प्रणालियों के अभ्यास में निरापद रहने के लिए और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए सावधानी अत्यंत आवश्यक है। **हठयोगप्रदीपिका** का यह श्लोक विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है :

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ॥२.१६॥

प्राणायाम का समुचित अभ्यास सब रोगों को नष्ट कर देता है पर उसके दोषपूर्ण होने से अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। प्राणायाम करनेवालों के लिए यह एक चेतावनी है।

प्राणायाम का अभ्यास करने से पहले कुछ प्राथमिक बातों पर ध्यान देना चाहिए, इससे शीघ्र प्रगति हो सकती है और अभ्यास में पूर्ण सफलता मिल सकती है। कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण **निर्देश** और **पूर्वोपाय** इस प्रकार हैं :

- स्वच्छता आवश्यक है। प्राणायाम से पूर्व प्रक्षालन कर लें। स्नान प्राणायाम से पहले भी किया जा सकता है और बाद में भी। यह व्यक्ति की सुविधा पर निर्भर करता है।
- भोजन विशेष रूप से सात्त्विक लें। धूम्रपान और मद्यपान न करें। प्राणायाम या तो निराहार खाली पेट करें या भोजन के बाद चार घंटे का अवकाश देकर करें। अभ्यास के समय पेट हल्का रहना चाहिए।
- वस्त्र ढीले और आरामदेह हों। अभ्यास में कीट-पतंगों की बाधा से बचने के लिए एक चादर का उपयोग किया जा सकता है।
- ध्यान का कोई भी आसन, विशेष रूप से पद्मासन या वज्रासन प्राणायाम के लिए अनुकूल होगा। प्राणायाम करते समय शरीर जितना ढीला और शांत रख सकें, अच्छा है। मेरुदंड, गरदन और सिर एकदम सीधे और बीच में रहें। आंखें बिना किसी दबाव के मृदुता से बंद रखें।
- प्राणायाम के दौरान कोई तनाव या दबाव नहीं रहना चाहिए। श्वास को इतनी देर तक नहीं रोकना चाहिए कि वह सुखद न रहे। प्राणायाम को स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास के साथ करना चाहिए।
- किसी भी प्रकार का हृदय सम्बन्धी रोग या उच्च रक्त चाप होने पर कपालभाति और भस्त्रिका प्राणायाम नहीं करना चाहिए। पतले दस्तों की स्थिति में दो-चार दिन के लिए प्राणायाम न करना ठीक है। कभी जल्दीबाजी न करें। कभी अपनी सामर्थ्य से बाहर न जायें।

- अतिशयता बुरी है। क्योंकि आधे घंटे के प्राणायाम से बहुत लाभ मिला है, इसलिए अविवेकी होकर प्राणायाम का समय बढ़ाना ठीक नहीं है। अधिक लाभ पाने की शीघ्रता में प्राणायाम की अवधि बढ़ाना संकटपूर्ण हो सकता है। मंद, स्थिर, समान गतिवाला व्यक्ति दौड़ जीतता है, यह बात हर स्थिति में सत्य है।
- प्राणायाम का अभ्यास सदा शांत मन से करें। मन्थरता आवश्यक है; इससे श्वास पर नियंत्रण में मदद मिलेगी और सांस स्वतः ही दीर्घ हो जायेगी। अपने अभ्यास में नियमित और क्रमबद्ध रहें। अभ्यास के दौरान अपना सामान्य बुद्धि-विवेक बनाये रखें। प्राणायाम के बाद नवीनता, ताज़गी, हर्ष और प्रफुल्लता का अनुभव होना चाहिए।
- सदा ऐसा मानसिक भाव बनाये रखें, जो प्रेम, दया, क्षमा, शांति और आनंद जैसे दिव्य गुणों के विकास के अनुकूल हो। अंदर श्वास लेते समय ऐसा अनुभव होना चाहिए कि शरीर में ऊर्जा का संचार हो रहा है और उसमें हल्कापन आ गया है और श्वास छोड़ते हुए ऐसा महसूस होना चाहिए कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि दोषपूर्ण वृत्तियां सहज ही लुप्त होती जा रही हैं। इस प्रकार की प्रतीति करें कि यह प्राण है जो श्वास के माध्यम से अंदर जा रहा है, मात्र वायुमंडल की हवा नहीं।
- श्वास के अतल में विद्यमान आंतरिक जीवन-शक्ति का अनुभव करें। योगी बनकर आनंद, प्रेम और प्रकाश को विकीर्ण करें।

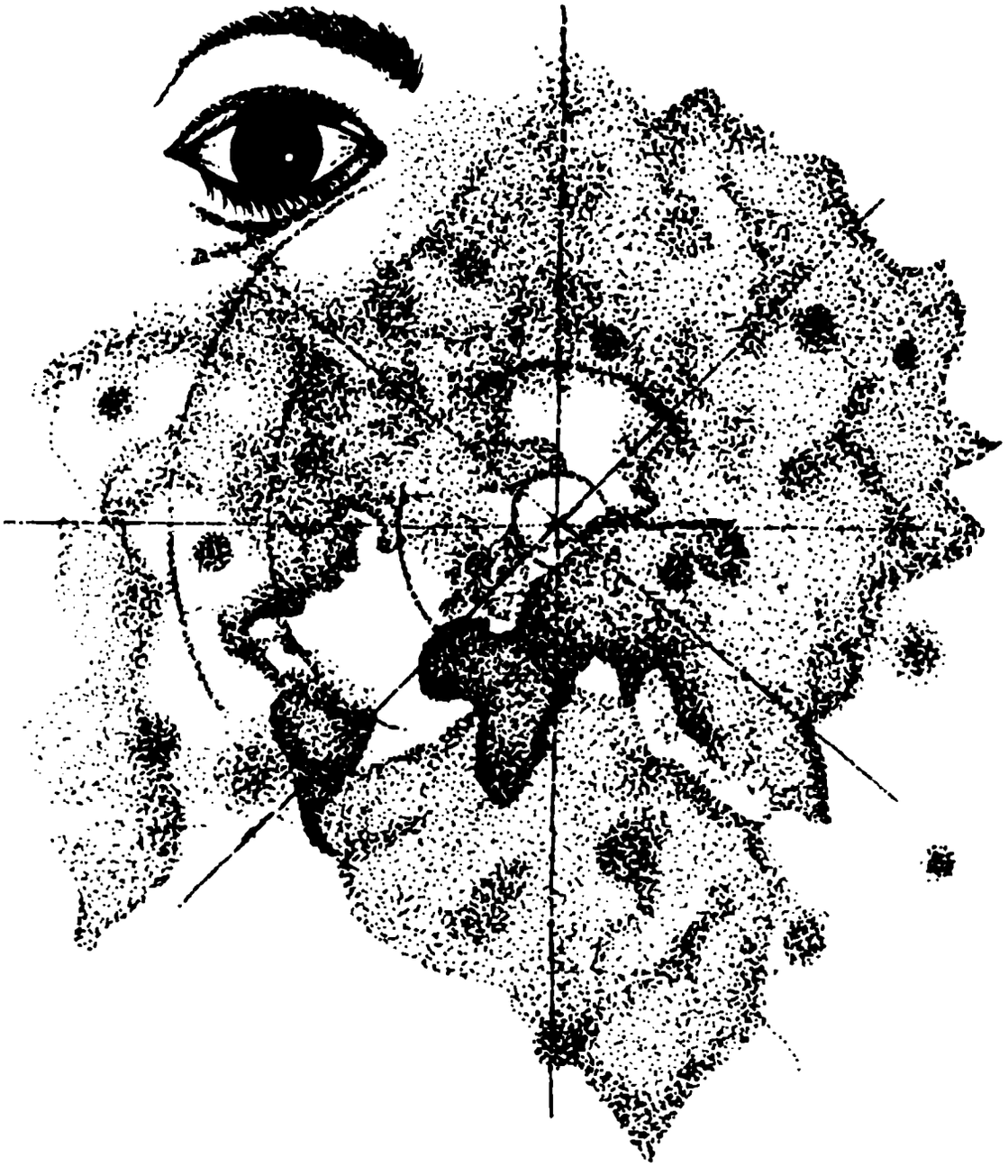

सत्य की खोज

अध्याय १

सत्य की खोज

सत्य का पता लगाने के लिए मनुष्य अनादि काल से प्रयत्नशील रहा है। लेकिन सोलहवीं शताब्दी एक ऐसा काल था जिसने हमारी धरती पर सत्य की खोज की दिशा में एक नया उत्कर्ष, एक नया मार्ग और एक नया दृष्टिकोण प्रवर्तित किया। आज के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के जनक न्यूटन और डेकार्टे ने इस शताब्दी में उन रहस्यों को योजनाबद्ध रूप से सुलझाने और प्रकट करने का निश्चय किया जो इस विश्व के भौतिक पक्षों या रूपों के तल में विद्यमान थे। जगत् की पूरी तरह ठोस और स्थूल और केवल भौतिक चीज़ों के रहस्यों को। अलग-अलग समयों में, अलग-अलग स्थानों पर अनेक वैज्ञानिकों द्वारा निष्कर्ष तक आने से पहले अनेक प्रयोग और परीक्षण और वस्तुपरक निष्पक्ष प्रमाणीकरण की परम्परा स्थापित की गयी और यह कोशिश की गयी कि परिणामों का प्रस्तुतीकरण अधिक से अधिक विशद और स्पष्ट हो। सुनियोजित रूप से आगे बढ़ने का यह तरीका उन सभी वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार और ग्रहण किया गया जो अविच्छिन्नता बनाये रखकर खोज के कार्य को आगे ले जा रहे थे। ये चार शताब्दियां चुनौतियों की रही हैं—परिवर्तनों, उतार-चढ़ावों और नये-नये आविष्कारों की। अब हम इस भौतिक जगत् को समझ गये हैं। इसकी संरचना और इसके गतिविज्ञान को भी।

संरचना

हमने समझ लिया है कि ऊर्जा और भौतिक तत्त्व इमारत की अलग-अलग ईंटें नहीं हैं। भौतिक तत्त्व मूलतया ऊर्जा है—बोतल-बंद ऊर्जा—यह स्थापित हो चुका है। ऊर्जा को इस संपूर्ण भौतिक जगत् का मूल संरचक तत्त्व माना गया है। प्रसिद्ध समीकरण

$$\text{ऊर्जा} = \text{द्रव्यमान} \times \text{प्रकाश वेग}^2 \quad (E = MC^2)$$

ने इस ज्ञान को अत्यंत विशद और सार रूप में प्रस्तुत कर दिया। 'ई' का अर्थ है एनर्जी अथवा ऊर्जा जो द्रव्यमान के परिवर्तन या रूपांतर से प्राप्त हुई है, 'एम' मास अथवा द्रव्यमान है, 'सी' प्रकाश का वेग है। इस प्रकार भौतिक जगत् की संरचना समझ ली गयी है।

न्यूटन के नियम

न्यूटन के यंत्रविज्ञान ने गति के नियमों को बताया।

न्यूटन के गति के तीन नियम :

- हर तत्त्व अपनी विश्राम की स्थिति में या एक जैसी गति की अवस्था में बना रहता है जबतक कि उसपर किसी बाहरी बल का प्रयोग न हो।
- यह बल गति-वर्द्धन के अनुरूप समानुपाती रहता है।
- क्रिया और प्रतिक्रिया समान और विपरीत है।

गति के ये नियम जो हमारे चारों ओर के भौतिक जगत् का संचालन करते हैं, इनकी या किसी भी परिघटना के कारण की खोज करना वैज्ञानिक आविष्कारों का केंद्रबिन्दु बन गया। इस सदी के पचास के आरंभ के वर्षों में जब हमने इस भौतिक जगत् के सूक्ष्मतर क्षेत्र में प्रवेश किया तब प्रमात्रा यंत्रविज्ञान में निश्चयवादात्मक दृष्टि के साथ चिरप्रतिष्ठित यांत्रिकी के स्पेक्ट्रम को विस्तृत करता हुआ एक नया आयाम सामने आया। परमाणुओं या अणुओं के समान अत्यंत सूक्ष्म या छोटी विमाओं पर कार्य करते हुए न्यूटन के नियम व्यर्थ और विफल हो गये और इनके ज्ञान के लिए अधिक नमनीय प्रायिकतात्मक नियमों का प्रयोग करना पड़ा, जो प्रमात्रा यंत्रविज्ञान का केन्द्रस्थल हैं। न्यूटन के गति के नियम सामान्य चालवाले बल, वेग, गति-वर्द्धन का परिकलन करने में तो सक्षम थे, लेकिन जब उन्हें प्रकाश के वेग के समकक्ष अत्यंत तीव्र वेगों के लिए प्रयुक्त किया गया तो वे विफल हो गये। सूक्ष्म मापों के लिए नये नियमों की खोज की गयी। हीसेनबर्ग, श्रोडिंगर, डिराक आदि वैज्ञानिकों के आविष्कारों ने प्रमात्रा यंत्रविज्ञान को प्रतिष्ठित किया। न्यूटन के नियम विद्युत-वेग या जिन विद्युत-तरंगों को ठीक से वर्णित नहीं कर सकते थे, प्रमात्रा यंत्रविज्ञान ने उन्हें पूरी तरह बताया। प्रमात्रा यंत्रविज्ञान के नियमों ने अणु और अणु-तरंगों से निकलनेवाली विद्युत-तरंगों का समग्र विवरण दिया। इन नियमों की विशेषता है कि जब बड़े आयामों या विमाओं पर प्रयोग किया जाता है तब वे न्यून होकर न्यूटन के नियम बन जाते हैं और जब सूक्ष्म विमाओं पर काम होता है तब वे प्रमात्रा यांत्रिकी के नियम होते हैं। प्रमात्रा यांत्रिकी ने उन नियमों का बड़ी परिपूर्णता से विवरण दिया, जो अत्यंत तीव्र वेगों का और अत्यधिक छोटे विमा या विस्तारों का परिचालन करते हैं।

दिक्-काल सांतत्यक और अनिश्चयता के सिद्धांत विज्ञान को अधिक बड़ी स्वतंत्रता और नमनीयता के क्षेत्रों में ले गये और उसे एक व्यापक दृष्टि-विस्तार दिया।

अनिश्चितता सिद्धान्त

एक कण (इलेक्ट्रॉन) की स्थिति और गति को एकदम सही और शुद्ध रूप से एक साथ निश्चित कर देना असंभव है। यदि स्थिति की यथार्थता का ज्ञान अधिक होगा तो गति की निश्चयात्मकता की यथार्थता कम हो जायेगी। स्थिति के परिसर $\triangle p$ और गति के परिसर $\triangle m$ का संबंध इस प्रकार है। (p पोजीशन का और m मूमेन्टम का सूचक है) : $\triangle p \triangle m = h$. h प्लैंक का नियतांक है।

इसलिए वहां कण की या तो स्थिति या गति की निर्धार्यता के साथ एक अनिश्चितता तथ्यतः जुड़ी हुई है। जैसा कि हीसेनबर्ग ने स्पष्ट किया है कि भौतिक तत्त्व की दुहरी प्रकृति के कारण ऐसा होता है; एक चलनशील कण की प्रकृति चाहे जो भी हो, पर तरंग गुणधर्म इसके साथ संयुक्त है। ऐसी तरंगों की तरंग लंबाई (दैर्घ्य) डी ब्रोगली तरंग लंबाई λ कही जाती हैं, जिसका परिकलन $\lambda = h/mv$ सूत्र से किया जा सकता है।

जहां m कण का द्रव्यमान है और v उसका वेग है। यह इस बात का सूचक भी है कि किसी भी ऊर्जा तरंग में तरंग-लंबाई λ के साथ-साथ m अर्थात् द्रव्यमान भी इससे संयुक्त रहता है।

एक ओर मूलभूत कणों के सूक्ष्मतर जगत् में परीक्षण ज़ोर पकड़ गया और वैज्ञानिकों ने सृष्टि की यांत्रिकता और क्रियाविधि का अन्वीक्षण आरंभ किया, दूसरी ओर भौतिक विज्ञानियों ने एकदम नयी वस्तु के रूप में कुछ 'काले छिद्रों' को पाया, कुछ ऐसे 'टेकिओन्स' अर्थात् कणों को जो प्रकाश के वेग से भी अधिक तीव्र वेग से यात्रा कर रहे थे। इसके अलावा, प्रमात्रा भौतिकी भौतिक विज्ञानियों के बीच चर्चा का विषय हो गयी। प्रेक्षण और मापन की प्रक्रिया इन मूलभूत कणों के आचरण को बदल देती है तथा प्रेक्षक प्रेक्ष्य वस्तु को बाधा पहुंचाये बिना उसे देख नहीं सकता—ये वे तथ्य थे जिन्होंने समूचे वैज्ञानिक वस्तुपरक प्रयोग को हिलाकर रख दिया, क्योंकि यही वह आधार था जो पिछली चार शताब्दियों से विज्ञान के सारतत्त्व या केन्द्र का निर्माता था। **अब हम एक मोड़ पर हैं। आत्मपरकता को कैसे भी वैज्ञानिक प्रयोग का विषय बनाना है**—यह नोबेल पुरस्कार से सम्मानित वैज्ञानिकों का कथन है। और यह एक चुनौती है उनके लिए, जो विज्ञान के क्षेत्र में शोध-कार्य कर रहे हैं।

डी एन ए और आर एन ए अणुओं और उनके आचरणों के ज्ञान ने, मस्तिष्क कोशिकाओं और उनकी प्रकार्यात्मकता ने गहरी अन्तर्दृष्टि लाना आरंभ कर दिया है और जीवन-विज्ञानों एवं तंत्रिविज्ञानों के आविष्कारकों ने जीवन और चेतना को संभावित रूप से **डी एन ए/आर एन ए** अणुओं और मस्तिष्क कोशाणुओं के कार्य से अलग मानना आरंभ कर दिया है।

इस प्रकार, लगभग चार शताब्दियों के बाद विज्ञान की प्रगति ने हमें इस जगत् के सूक्ष्मतर आयामों में प्रवेश दिलाया है। आगे हमारे भविष्य के अनुसंधान भौतिक जगत् की अपेक्षा सूक्ष्मतर जगत् से संबंधित रहस्यों के उद्घाटन के लिए होंगे—जैसे जीवन (प्राण), मन, भाव-संवेदन, बुद्धि, अहंकार, आत्मा, चेतना आदि।

यह सृष्टि का वह क्षेत्र है जिसमें भारत के प्राचीन ऋषियों ने न केवल अन्तर्जगत् की संरचना का ज्ञान प्राप्त किया बल्कि वे गति विज्ञान की दिशा में भी आगे गये जो चेतना के अनेक भिन्न स्तरों को परिचालित करता है। यह ज्ञान योगविद्या या अध्यात्म विद्या के अंदर विद्यमान है।

जब कि शरीर-मन की समस्या को लेकर वैज्ञानिकों में दीर्घकाल से एक कौतूहल और जिज्ञासा चली आ रही है, भारतीय मनीषियों ने प्राण को मूल संरचक तत्त्व माना जो मन और भौतिक तत्त्व के बीच सेतु का काम करता है। इस तरह उन्होंने इस समस्या के रहस्य का समाधान प्रस्तुत किया। प्राण के नियम और गतिविज्ञान को प्राण पर आधिपत्य प्राप्त करने के लिए किये गये क्रमबद्ध अभ्यासों द्वारा समझा गया।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित प्रो० जोसेफसन का विश्वास है कि उपनिषद् आधुनिक भौतिक विज्ञानियों को इस सृष्टि के सूक्ष्मतर आयामों में आविष्कार करने के लिए नये निर्देश दे सकते हैं। उनका सुझाव है कि सत्य की खोज में प्रगति करने के लिए 'प्राण' का अध्ययन किया जाना चाहिए और उसके रहस्यों का उद्घाटन होना चाहिए।

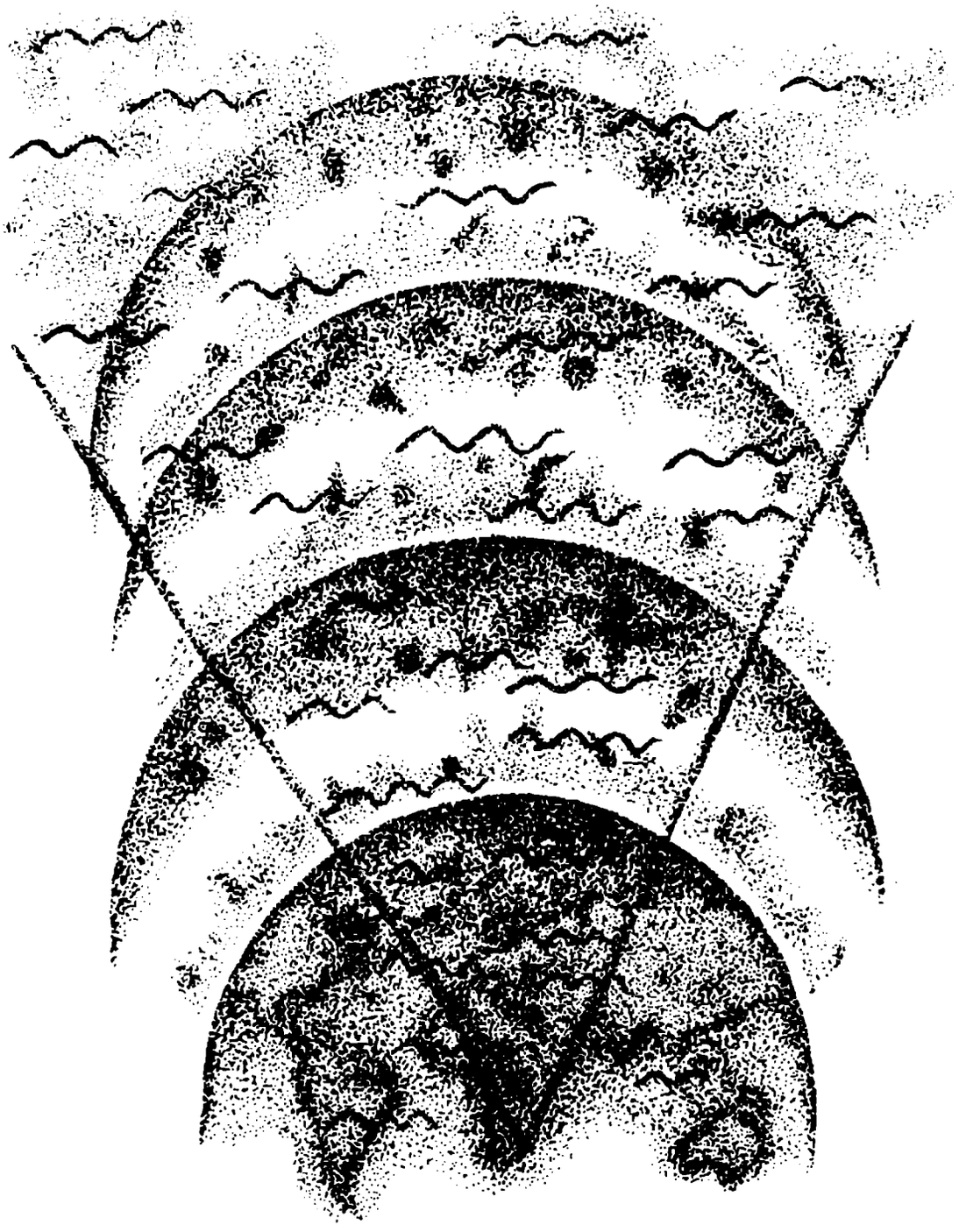

प्राण का स्पेक्ट्रम

अध्याय २

सृष्टि का मूल संरचक तत्त्व

एक बार मुझे एक वनस्पति-प्रदर्शनी में जाने का मौका मिला। वहां एक 'ड्रोसेरा' पौधे ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। मैंने देखा, जब कोई कीड़ा इस पौधे के फूल पर बैठता है तब फूल से एक चिपचिपा-सा द्रव निकलता है, उसमें कीड़ा फंस जाता है और वह उस कीड़े को खा लेता है।

हम सबने छुई-मुई पौधे को देखा ही है। जब हम इसकी पत्तियों को छूते हैं या उनपर फूंक मारते हैं तो वे स्वाभाविक रूप से सिकुड़ जाती हैं।

पौधों की इन श्रेष्ठतर किस्मों में स्पर्श का बोध एक नैसर्गिक क्रिया के रूप में प्रत्यक्ष है, चाहे वह आहार के लिए हो या आत्मरक्षा के लिए। ये पौधे अपने संक्रमण काल में हैं और पशु जाति की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जहां जीवन-तत्त्व अधिक मात्रा में अभिव्यक्त है।

यूरेनियम और रेडियम आदि के समान विघटनाभिक तत्त्व, एलेक्ट्रोन की तरह ऊर्जा रश्मियों को निर्मुक्त करते हैं और क्रमशः हल्की या अल्पतर धातुओं में अपकर्ष को प्राप्त हो जाते हैं। पर यह अपकर्ष इन तत्त्वों की 'अर्ध आयु-अवधि' पर निर्भर रहने से दशाब्दियां या शताब्दियां ले सकता है। इस खनिज जगत् को कुछ अंश तक जड़ या निश्चेतन जगत् कह सकते हैं। इसमें क्रियाशीलता का आविर्भाव जीवन के बृहत्तर प्राकट्य की दिशा में पुनः संक्रमणशीलता का द्योतक है और जड़ निश्चेतन जगत् से वनस्पति जगत् की ओर बढ़ने की तैयारी को प्रकट करता है।

पास के एक शहर में बगीचों और कुंजों के बीच चहलकदमी करते हुए कुछ लोगों ने देखा कि बंदर एक संकट बन गये हैं। वे बेहतरीन आमों के बगीचे को नष्ट करने में लगे हुए हैं, जब कि पांच चौकीदार उसकी चौकसी के लिए नियुक्त हैं। लेकिन पास का खुशनुमा सन्तरों का बगीचा ज्यों का त्यों है, जब कि वहां केवल एक चौकीदार है, वह भी अक्सर ऊंघता और जम्भाई लेता हुआ। उत्सुकतावश उन लोगों में से एक आदमी ने कारण पूछा तो पता लगा कि जब बन्दरों ने सन्तरे खाने की कोशिश की तो उनके छिलकों का रस उनकी आंखों में चला गया, जिससे उन्हें बड़ी परेशानी हुई और इस तरह सन्तरों का बगीचा बच गया। पर चौकीदार ने आगे बताया—"कल मैंने एक बन्दर को सन्तरा तोड़ते देखा था, उसने हाथ पीछे कर उसे छीला और खा गया। मुझे उसे भगाना पड़ा। अब सन्तरों के बगीचे को भी बंदरों का खतरा है।"

ऐसे बुद्धिमान बन्दरों या कपि-मानवों में इस प्रकार की समझ देखी जा सकती है—यह पशुवर्ग से मानव वर्ण-क्रम में संक्रमण का सूचक है।

शकुन्तला देवी कम्प्यूटर दिमाग लेकर जन्मी हैं। उन्हें दो बीस अंकवाली संख्याओं का गुणन निकालने में मुश्किल से ही कुछ समय लगता है। लंबी संख्याओं का भाग उनके लिए सहज स्वाभाविक है। अत्यंत संशयालु आलोचक और कठिन तबीयत के वैज्ञानिक भी शकुन्तला की कम्प्यूटर-क्षमता पर चकित हैं।

महामेधा, अंतःप्रज्ञा और चमत्कारों को सामान्य नहीं माना जाता। वे साधारण मनुष्यों की सामर्थ्य से बाहर की चीज़ें हैं। जिनमें इस प्रकार की क्षमताएं हैं, वे मनुष्य वास्तव में विकसित होकर संक्रमण की उस स्थिति में पहुंच चुके हैं, जो उनके लिए श्रेष्ठतर मानवजाति का मार्ग खोलती है। योगी और अध्यात्म पुरुष पृथ्वी पर अतिमानव जाति के आगमन को 'निश्चय' के रूप में स्वीकार कर चुके हैं। संक्रमण या परिवर्तन अब एक व्यापक रूपांतर की दिशा में अग्रसर है।

प्राण तत्त्व

प्रकृति उदार है। सारी विविधताओं के बीच यदि हम गहराई में जाकर देखें तो वहां एक ऐसे 'सत्य' को चमकता पायेंगे, जो एकीकरण करता है। ऐसे किसी सत्य के साक्षात्कार के लिए ये संक्रमण-काल मध्यवर्ती द्वार की तरह हैं। दिखायी दे रही विविधताओं के तल में जीवन और प्राण के रूप में सत्य का सतत नैरन्तर्य है, जो सारी सृष्टि के मनकों को एक सूत्र में पिरोता है। इस अंतर्निहित जीवन-सत्ता को वेद और उपनिषद् 'प्राण' कहते हैं। यही 'प्राण' संपूर्ण सृष्टि का मूल संरचक तत्त्व है।

अथर्ववेद प्राण की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करता है :

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥११.४.१०॥

प्राण पिता है और उसके लिए सारे प्राणी प्रिय पुत्र की तरह हैं। प्राण संपूर्ण सृष्टि का ईश्वर है। **यच्च प्राणति यच्च न** का अर्थ है जो श्वास लेता है और जो श्वास नहीं लेता है—जड़-चेतन जगत् दोनों में प्राण विद्यमान है। प्राण की यह विलक्षणता उसकी सर्वव्यापकता को प्रकट करती है।

अपानती प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥११.४.१४॥

बच्चा गर्भ में श्वास-प्रश्वास लेता है। हे प्राण, जब तुम प्राण-संचार करते हो, वह पुनः जीवित हो उठता है।

इसी प्रकार **प्रश्नोपनिषद्** में

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥२.१३॥

तीनों लोकों में जो कुछ भी अस्तित्व में है, सब प्राण के नियंत्रण में है। जैसे माता अपने बच्चों की रक्षा करती है, वैसे ही हे प्राण, हमारी रक्षा करो। हमें श्री-सम्पत्ति दो, हमें प्रज्ञा दो।

योग साहित्य में यह प्राण की सबसे व्यापक परिभाषा है। अथर्ववेद एवं प्रश्नोपनिषद् के अलावा अन्यत्र प्राण के सीमित रूप का वर्णन मिलता है—जैसे **तैत्तिरीय उपनिषद्** की ब्रह्मानन्द वल्ली में देवता, मनुष्य और पशु सब प्राण से ही अनुप्राणित माने गये हैं: **प्राणं देवा अनु प्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च ये ।** प्राण से ही सब प्राणी आयुष्मान् हैं: **'प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । ३.१ ।**

ऊर्जा स्पेक्ट्रम

आवृत्ति और संबंधित कोणांक के द्वारा ऊर्जा को लक्षित किया जाता है। संबंध को नीचे दिया गया है:

$$\lambda = c/\vartheta$$

इसमें λ तरंग-दीर्घता है और ϑ आवृत्ति है। ऊर्जा E और आवृत्ति ϑ के बीच का संबंध

$$E = h\vartheta$$

के द्वारा दिया गया है, जहां h प्लैंक का नियतांक है और c प्रकाश का वेग है।

ऊर्जा का विद्युत्-चम्बकीय स्पेक्ट्रम नीचे दिखाया गया है, जो स्पेक्ट्रम् के एक छोर पर भौतिक और दूसरे सिरे पर क्षेत्र से आरंभ होनेवाले अनेक प्रदेशों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

कम होती तरंग-दीर्घता $\lambda \rightarrow$

क्षेत्र	रेडियो तरंगें	अव	रक्त	प्रकाश	परा बैंगनी	एक्स-किरणें	अन्तरिक्ष किरणें	भौतिक कण

बढ़ती हुई आवृत्ति $\vartheta \rightarrow$

(१) दीर्घ तरंगें
(२) मध्य तरंगें
(३) लघु तरंगें

प्राण प्राणमयकोश का मूल उपादान तत्त्व है। सीमित अर्थ में प्राण को श्वास-प्रश्वास के रूप में भी ग्रहण किया जाता है या कहीं केवल अंतःश्वसन के रूप में।

आधुनिक विज्ञान ने इस संपूर्ण भौतिक जगत् के संविन्यास के मूल में केवल ऊर्जा को स्वीकार किया है। भौतिक तत्त्व भी 'बोतल बंद' ऊर्जा ही है, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं।

प्रकाश का क्षेत्र करीब-करीब संपूर्ण विद्युत-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के केन्द्र में है। प्रकाश का तरंगों के रूप में और कणिकाओं के रूप में व्यवहार व्यतिकरण प्रयोगों और प्रकाश विद्युत प्रभावों के द्वारा प्रकट हुआ है। इस प्रकार 'तरंग या द्रव्य' के रूप में प्रकाश की द्विविध प्रकृति भली प्रकार स्थापित हो गयी है। जैसे-जैसे आवृत्ति बढ़ती है, हम परा बैंगनी, एक्स-किरणों, अन्तरिक्ष किरणों आदि के क्षेत्रों में यहां तक कि खास द्रव्य के क्षेत्र में संचलन करते हैं। ऊर्जा प्रत्यक्ष रूप से आवृत्ति के समानुपात होती है और इसलिए, ऊर्जा कंम से कम स्थान में ठसाठस भर जाती है जबतक कि वह 'द्रव्य-ता' प्राप्त न कर ले।

प्रकाश के दूसरी तरफ (निम्नतर आवृत्ति क्षेत्र), 'अव रक्त' (ऊष्मा या ताप) और रेडियो तरंगों के प्रदेश हैं, जो अत्यंत धीमी आवृत्तियों और अत्यंत उच्च आयामों या कोणांकों के साथ क्षेत्रों की तरफ जाते हैं। चुम्बकीय और स्थिर विद्युत क्षेत्र ऐसे कुछ उदाहरण हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि ऊर्जा इस भौतिक जगत् का मूल है। दूसरी ओर प्राण संपूर्ण सृष्टि का मूल संरचक तत्त्व है। इस तरह ऊर्जा प्राण का स्थूलतम प्राकट्य है और सृष्टि-स्पेक्ट्रम के एक सिरे पर है। स्थूलतम यह इसलिए है, क्योंकि इसके पास न्यूनतम स्वतंत्रता है। जैसा कि हम कहते ही हैं कि द्रव्य अक्रिय या जड़ है। अनिश्चितता-सिद्धांत द्वारा निर्दिष्ट स्वतंत्रता के छोटे-से अंश के अतिरिक्त इसमें पूरी जड़ता है। हम यहां तक कहने का साहस कर बैठते हैं कि इसमें न जीवन है, न प्राण है।

ऊर्जा-स्पेक्ट्रम से समानता ग्रहण करते हुए हम यहां प्राण का स्पेक्ट्रम प्रस्तुत कर रहे हैं।

खनिज	वनस्पति	पशु	मानव	अतिमानव
जगत	राज्य	जातियां	जाति	लोक

प्राण का स्पेक्ट्रम

वनस्पति जगत् में जीवन की अभिव्यक्ति और स्व-प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया के रूप में पुनरुत्पादन काफी सुनिश्चित और स्पष्ट है। संचलन की, कार्य करने की और स्वयं परिवर्तित हो जाने की यह बढ़ती हुई स्वतंत्रता **ऊर्जा** (भौतिक जगत् का मूल 'उपादान') और **प्राण** (सूक्ष्मतर अभिव्यक्तियों में सत्ता के वनस्पति, पशु, मानव आदि दूसरे स्तरों पर) के बीच का अंतर है। स्तर जितना सूक्ष्मतर होगा, स्वतंत्रता उतनी ही अधिक होगी।

प्राण के अभिव्यक्तिकरण में तब स्वतंत्रता के नये आयाम प्रकट होते हैं जब हम खनिज जगत् से वनस्पति जगत् की ओर तथा पशु जगत् की ओर जाते हैं, जहां आहार और प्रजनन की सहज क्रियाओं से अलग नींद, चलना और दौड़ना विशेष पक्षों के रूप में प्रकट हुए हैं।

प्राण का यह नया रूप जिसे चित्त या मन कहते हैं, प्राण की अत्यंत सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। जैसे संस्थापित यंत्रविज्ञान केवल कारण-कार्य संबंध और निश्चिततावाद से लक्षित एवं प्रतिपादित है, वैसे ही पशु जातियों में भी सहज क्रियाएं निश्चयात्मक हैं। सूक्ष्मतर भौतिक जगत् में नमनीयता और लचीलापन अधिक है और वहां अनिश्चयात्मक प्रायिकता सिद्धांत का प्रयोग करना होता है। इस सूक्ष्म भौतिक जगत् में स्वतंत्रता का परिमाण अधिक है। इसी तरह, मन के क्षेत्र में आश्चर्यजनक विशाल स्वतंत्रता है। मन एक दिशा में संचरण कर सकता है, अनेक दिशाओं में संचरण कर सकता है या यह एक दूसरी पराकाष्ठा पर केवल मौन या 'शान्त' रह सकता है, जैसा कि हम निर्विचार-निर्विकल्प योगियों में देख सकते हैं। मनुष्य के रूप में, स्वतंत्रता की ये तीनों स्थितियां कर्म-स्तर पर हमारे अंदर होती हैं। इसे हम **ब्रह्मसूत्र भाष्यकार शंकर** के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं :

'कर्तुमकर्तुमन्यथा वा कर्तुं शक्यम् . . .' ।।१.१.२.२ ।।

करना, न करना, अन्य तरह से करना—कर्म की इन तीनों स्थितियों में समर्थ होना। यह कर्म-स्तर की स्वतंत्रता है।

और मानसिक स्तर पर हमारे पास मन की यह संरचना है :

स्वयमेव पीनतां याति स्वयमेव तानवं याति ।

अथवा

स्वयमेव प्रसरति स्वयं संकोचमेति च ।।योगवासिष्ठ ६.१९.१९।।

यह स्वयं ही स्थूल हो जाता है और स्वयं ही सूक्ष्म हो जाता है; स्वयं ही संकोच और स्वयं ही विस्तार को प्राप्त होता है; स्वयं वेग-आवेगयुक्त और स्वयं मंद-शांत स्पंदन को प्राप्त करता है।

भौतिक जगत् के मूल-संरचक तत्त्व ऊर्जा में यह सामर्थ्य नहीं है। अपनी गति बदलने के लिए या अन्य किसी वांछित दिशा में प्रवहमान होने के लिए इसे एक बाह्य कर्ता या कारण की ज़रूरत है। मन के रूप में प्राण ने इस स्वतंत्रता को प्राप्त किया है। वह इच्छा कर सकता है—संकल्प या विकल्प—और स्वयं परिवर्तित हो सकता है।

इस स्वतंत्रता के प्रयोग से कोई भी मनुष्य विकास आरंभ कर सकता है और पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से उन्नति कर सकता है। एक सामान्य मनुष्य महान् मानव बन सकता है। वह अतिमानव की दिशा में अग्रसर हो सकता है। प्राण की अभिव्यक्ति के इन अतिमानवीय स्तरों पर भूख और प्यास की सीमाओं के रूप में शरीर की जो सीमाएं, जो बंधन हैं, सर्वप्रथम वे समाप्त हो जायेंगे। इसके बाद गुरुत्वाकर्षण के बंधन से मुक्ति मिल जायेगी। विकास-क्रम में मन और भावजगत् जैसे-जैसे शुद्ध होते चले जायेंगे, कामनाओं की जंजीरें टूट जायेंगी एवं चित्त की चंचलता नष्ट हो जायेगी। एक स्पष्ट दृष्टि और दर्शन उदित होगा और वही परिचालित करेगा। संपूर्ण सृष्टि को शासन करनेवाले सार्वभौमिक नियमों के साथ समस्त कार्यों का सामंजस्य हो जायेगा। स्वतंत्रता की इस वृद्धि के साथ संयुक्त हैं उच्चतर क्षमताएं, शक्ति और आनंद। सूक्ष्मतम रूप में प्राण पूर्ण आनंद की एक ऐसी अवस्था है जिसमें प्रायः कोई प्रत्यक्ष या सुनिश्चित क्रियाशीलता नहीं है। इस आनंद के मूल में **नीरवता** की स्थिति है। इस **नीरवता** या मौन को शुद्ध चैतन्य कहा जाता है जिसमें न्यूनतम अंश में भी जड़ता या तमस् नहीं है। यह प्राण की कारण अवस्था है—प्राणिक स्पेक्ट्रम का मूल सूक्ष्मतम छोर। इस स्पेक्ट्रम का स्थूलतम छोर भौतिक तत्त्व है, जिसमें न्यूनतम चैतन्य है।

विभिन्न मानवोत्तर स्तरों का निर्देश विभिन्न नामों से किया गया है। इनमें उच्चतर शक्तियां हैं और आनंद का बढ़ता हुआ परिमाण है। इन विभिन्न संस्तरों को लोक कहा गया है। सृष्टि के इन संस्तरों (लोकों) में जो व्यक्ति सत्ताएं रहती हैं और जो प्राण की उच्चतर अभिव्यक्ति से संपन्न हैं, उनमें स्वतंत्रता की उच्च और नवीन श्रेणियां हैं, आनंद के महत्तर स्तर हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् में चेतना के इन स्तरों को हम इस प्रकार समझ सकते हैं :

चेतना के स्तर : लोक	आनंद के मात्रक
१. मनुष्य लोक (मानव स्तर)	१
२. मनुष्य-गन्धर्व लोक	$१०^{२}$
३. देव-गन्धर्व लोक	$१०^{४}$
४. पितृ-चिरलोक लोक	$१०^{६}$
५. आजानजान देवलोक	$१०^{८}$
६. कर्मदेव लोक	$१०^{१०}$
७. देवलोक	$१०^{१२}$
८. इन्द्रलोक	$१०^{१४}$
९. बृहस्पति लोक	$१०^{१६}$
१०. प्रजापति लोक	$१०^{१८}$
११. ब्रह्म लोक	$१०^{२०}$

इस तालिका में हम मनुष्यलोक से लेकर ब्रह्मलोक तक चेतना के विकास-क्रम को देख सकते हैं। मनुष्य इन चेतना स्तरों को एक के बाद एक क्रमशः प्राप्त कर सकता है और अकस्मात् एक साथ कई स्तरों का अतिक्रमण भी कर सकता है। पितरों का लोक उनका चिर अथवा सनातन लोक है। आजान एक विशेष लोक का नाम है जो ठीक पितृलोक से ऊपर है। कर्मदेव वे देव हैं जो अग्निहोत्र आदि कर्मों के माध्यम से कर्मदेव लोक तक पहुंचे हैं। इन्द्रलोक देवताओं के अधीश्वर इन्द्र का लोक है। बृहस्पति देवताओं के गुरु हैं—उनके लोक से ठीक आगे या ऊपर प्रजापति का लोक है जो प्रजाओं के स्वामी हैं। और अंत में ब्रह्मलोक है। यह ब्रह्म विश्वपुरुष अथवा हिरण्यगर्भा है और इस जगत् का स्रष्टा है।

प्राण और विश्व अभिव्यक्ति

खनिज जगत् :	न्यूनतम प्राण (चैतन्य) अधिकतम जड़त्व (भौतिक-ता)।
वनस्पति जगत्	पुनरुत्पादन, अन्तर-क्रिया, गति-संचलन का अभाव।
पशु वर्ग	गति-संचलन, सहज वृत्तिगत क्रियाएं भूख, प्यास, भय और प्रजनन से प्रेरित।
मानव जाति	विवेक बुद्धि से संचालित कार्य भौतिक शरीर के नियमों की शक्ति से बद्ध (चैतन्य और जड़त्व का संतुलन)।
गन्धर्व और पितृलोक	भूख, प्यास, गुरुत्वाकर्षण से मुक्ति; प्राणिक (पार-लौकिक) शरीर, लेकिन रूपरेखाओं से बद्ध।
देव लोक	इच्छानुसार शरीर का रूप और घनत्व चुनने में स्वतंत्र। वनस्पति स्तर से देवलोक तक समस्त स्तरों में परिभ्रमण की क्षमता। शाश्वत यौवन। कामनाओं, भावनात्मक आवेगों और स्वार्थ एवं भय से बद्ध।
बृहस्पति एवं प्रजापतिलोक	विज्ञानमय कोश। व्यक्तिगत समस्त कामनाओं और स्वार्थ से मुक्त। पूर्ण ज्ञान। अन्तरिक्षीय नियमों के साथ सामंजस्यपूर्ण कार्यक्षमता।
ब्रह्म लोक	संपूर्ण सृष्टि की कारण अवस्था। प्राण में उच्चतम कोटि की सूक्ष्मता, नमनीयता। सृष्टि के समस्त स्तरों के आर पार जाने की सामर्थ्य। व्यक्तिकरण का अभाव। अधिकतम चैतन्य। न्यूनतम जड़त्व। लगभग पूर्ण नीरवता का स्तर, व्यक्त परमसत्ता, अधिकतम ज्ञान-आनन्द-स्वातंत्र्य। पूर्णता और सत्यता—सब व्यावहारिक कार्य-प्रयोजनों के लिए।

इसके बाद आती है परमात्म या मोक्ष स्थिति—दिक्, काल, कारण से परे सर्वव्यापी परब्रह्म सत्ता—प्राण का उद्गमस्थल या स्रोत।

ऊपर की तालिका में स्वतंत्रता की उन क्षमताओं या परिमाणों का चित्रण है जिन्हें प्राण उन लोकों के बीच विकास की सीढ़ी पर प्राप्त करता है। इसमें प्राण की अभिव्यक्ति के विभिन्न आयामों का संक्षिप्त विवरण है।

संपूर्ण सृष्टि में एक समग्र निरंतरता है, जब कि चेतना के एक स्तर से दूसरे स्तर पर स्वतंत्रता का परिमाण बहुत बड़े अंतर या परिवर्तन के रूप में प्रतीत होता है। सृष्टि में यह स्वतंत्रता बड़े सुनियोजित ढंग से और क्रमिक रूप से निर्मित होती है, जैसा कि प्राण की संक्रमणशील अभिव्यक्तियों—रेडियोधर्मी अणुओं, ड्रोसरा पौधों, बन्दरों, मानवों या रहस्यविद् मनीषी महामानवों—के उदाहरणों द्वारा देखा जा सकता है।

इस संक्रमणशील अभिव्यक्ति के अध्ययन-परिशीलन से, हम विभिन्न स्तरों पर प्राण के नियमों के रहस्यों का उद्घाटन कर सकते हैं। इस प्रकार ये संक्रमणशील अभिव्यक्तियां प्राण की अभिव्यक्ति के एक स्तर और दूसरे स्तर के बीच सेतु का कार्य करती हैं जो प्रत्यक्ष ही स्वतंत्रता के नये पक्षों को प्रकट करते हैं। पशुओं का चलना-दौड़ना तथा उनकी दूसरी वृत्तियां एवं कार्य उन्हें पृथ्वी के साथ मूलबद्ध अचल पेड़-पौधों-वनस्पतियों से अलग करते हैं। और आगे जाने पर हम देखते हैं कि मनुष्य की बुद्धि की सामर्थ्य से होनेवाले कार्य पशुओं की स्वाभाविक कार्य-वृत्तियों से अत्यंत भिन्न हैं।

प्राण में जो स्वतंत्रता है, उसका सही दिशा में उपयोग मनुष्य के विकास में और उसे अस्तित्व के उच्च से उच्चतर स्तरों तक पहुंचने में मदद करता है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, "मानव-जीवन का उद्देश्य (अंदर विद्यमान) इस दिव्यता का प्रकाशन है।" **प्राण में स्वतंत्रता का यह तत्त्व दिव्यता है।** इस स्वतंत्रता का प्रकाशन जितना महान् होगा, उतना ही बड़ा स्वातंत्र्य और आनंद होगा, उतना ही बड़ा विकास होगा। और प्राण के या विश्व के उच्चतर नियमों को उतने ही बड़े स्तर पर समझा और सुलझाया जा सकेगा, उतनी ही बड़ी या महान् शक्ति को अधिगत किया जा सकेगा।

सर्वोच्च विकास का नाम है आनन्दमय कोश। यह हमारा सबसे अधिक विकसित आनन्दमय या कारण शरीर है। यही ब्रह्मलोक है, हिरण्यगर्भा स्रष्टा का लोक। श्रीअरविन्द इसे 'व्यक्त या अभिव्यक्तिशील परम सत्ता' कहते हैं। और अन्तिम है मोक्ष-स्थिति।

इस प्रकार हमने जो समझा, वे निम्नलिखित पक्ष हैं :

- **प्राण, एक आत्म अभिव्यक्तिशील जीवन-सत्ता, स्वयं को परिवर्तित करने में सक्षम, संपूर्ण सृष्टि का मूल संरचक तत्त्व।**
- **ऊर्जा, संपूर्ण भौतिक जगत् का मूल। प्राणिक स्पेक्ट्रम या आविर्भाव का सबसे स्थूल अंश।**

- वनस्पति जगत् में प्राण का उच्चतर प्राकट्य और हर उच्चतर स्तर पर स्वतंत्रता के नये आयाम का आविर्भाव : पशुवर्ग, मानवजाति, गन्धर्व और पितृलोक, देवलोक, बृहस्पति, और प्रजापति लोक एवं ब्रह्म लोक।
- प्राणिक अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों के बीच एक निरंतरता या अविच्छन्नता है और इन परिवर्तनशील अभिव्यक्तियों का अध्ययन विभिन्न स्तरों पर प्राण के नियमों को समझने में मदद करता है।
- प्राण की स्थूलता और तीव्रता (वेग) सृष्टि है। प्राण का मन्थर संचरण और विस्तार विकास का मूलभूत एवं अनिवार्य लक्षण है जो इसे इसके मूल स्रोत 'सत्य' की दिशा में ले जाता है।
- स्थूलीकरण और विकास की प्रक्रिया पूरी तरह प्रतिवर्ती है और चक्राकार रूप में नित्य गतिशील है।
- जगत् में मानव प्राणियों की यह भूमिका है कि वे प्राण के नियमों की गुत्थियों को सुलझायें और जीवन की कृतार्थता के लिए प्राण को अधिक से अधिक परिमाण में अभिव्यक्त करते हुए विकास-क्रम को पार करते चले जायें।
- सर्वोच्च आविर्भाव या प्रकटीकरण पूर्ण स्वातंत्र्य, आनंद, ज्ञान और शक्ति की स्थिति है। यह ब्रह्मलोक या ब्रह्मस्तर है। स्वार्थ की हर सीमा से मुक्त और ब्रह्मांड के नियमों के साथ समस्वर है—

  तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥

  प्रश्नोपनिषद् १.१६ ॥

- प्राण का उद्गम सर्वव्यापी, अनभिव्यक्त, नित्य ब्रह्मन् है, जिसे आत्मन् कहते हैं। आत्मन एष प्राणो जायते (३.३)। यह मोक्ष-स्थिति है—स्थिर, शांत, जहां से प्राण स्पंदन के रूप में उद्भूत होता है। इसी से सारी सृष्टि प्रकट होती है।

पत्ती का किर्लियान छायाचित्र

अध्याय ३

मानव प्राणियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष आयाम

किर्लियान आविष्कार

रूस में १९६१ में किर्लियान ने किर्लियान फोटोग्राफी का आविष्कार किया। इस आविष्कार ने अनेक वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया और वे इसकी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता के परीक्षण के लिए अग्रसर हुए। किर्लियान की खोज के अनुसार यह फोटोग्राफी का एक ऐसा प्रकार था जो पूरी तरह नया था और जो जीवन या मन या चेतना के एक ऐसे अस्तित्व को सूचित करता था जो भौतिक नहीं था। किर्लियान के द्वारा लिये गये पत्तियों, पौधों, तनों, जड़ों, सिक्कों, पत्थरों, उंगलियों, हथेलियों आदि के चित्रों ने इस इतर-भौतिक विद्यमानता को प्रकट किया। यह एक तरह की प्रकाश-छाया या आभा थी, जो उस वस्तु के चारों ओर दिखाई देती थी जिसका चित्र लिया गया था। यह आकार में उस वस्तु से बड़ी थी। इसे 'प्रभामंडल' का नाम दिया गया। किर्लियान के हज़ारों चित्रों ने प्रकृति के इस नये आश्चर्यजनक तथ्य को प्रकट किया।

एक प्रोफेसर एक बार दो पत्तियों को किर्लियान के पास लाये जो आंखों को एकदम एक जैसी लगती थीं और उनका फोटो लेने के लिए कहा। किर्लियान अंदर गये। उन्हें एक पत्ती का 'प्रभामंडल' मिल गया—पत्ती से बड़ा, जैसा कि सामान्यतया होता था। पर दूसरी पत्ती का फोटो वे न ले सके। बार-बार कोशिश करने के बाद भी उन्हें सफलता न मिली और फोटो लेनेवाली फिल्म पूरी तरह कोरी ही रही। वे इस रहस्य को सुलझा न सके और क्षुब्ध होकर बाहर प्रोफेसर के पास आये। किर्लियान से सारी बात सुनकर प्रोफेसर उत्तेजित हो उठे। उन्होंने किर्लियान को बताया कि एक पत्ती जीवंत और स्वस्थ थी, जब कि दूसरी विनष्ट होनेवाली थी, क्योंकि वह एक ऐसे पेड़ से ली गयी थी जिसकी सारी पत्तियां झर चुकी थीं, केवल कुछ ही बाकी थीं। प्रोफेसर जिस प्रयोजन के लिए आये थे, वह काम पूरा हो गया। उन्होंने किर्लियान को उनके आविष्कार के लिए बधाई दी।

अनेक शोध-संस्थानों ने किर्लियान यूनिटों की स्थापना की। साठी के अंतिम और सत्तरी के शुरू के बरसों में किर्लियान आविष्कार को लेकर काफी धूम-धड़ाका हुआ। अमरीका में कुछ विश्वविद्यालयों ने वैज्ञानिक रूप से स्वीकृत यथातथ्यता के साथ इस अनुसंधान की दिशा में कार्य करने के लिए विभाग आरंभ किये। १९६० में स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय ने 'पत्ती का छायाभास' का प्रदर्शन किया। उसके बाद ही यह सब संभव हो सका।

एक पत्ती का किर्लियान फोटो लिया गया और उसका आठवां, चौथाई, आधा एवं आधे से भी अधिक भाग काटने के बाद इस चित्र प्रक्रिया को दोहराया गया। ये चित्र

पहले चित्र से चौथे चित्र तक लगभग अपरिवर्तित रहे, पर पांचवे प्रयोग में पूरी तरह गायब हो गये।

अन्य अनेक अन्वेषकों द्वारा इस अद्‌भुत घटना का परीक्षण किया गया। किसी अ-भौतिक चीज़ को स्वीकार करना कठिन हृदय वैज्ञानिकों के लिए आसान नहीं था। इसलिए इस दिशा में इंगलैंड और अमरीका में कठोरता और नियंत्रण के साथ ज़ोर-शोर से प्रयोग प्रारंभ हुए। सत्तर के शुरू के बरसों में प्रकाशित सामग्री से अनेक जटिल वाद-विवाद सामने आये, जिनमें सबसे बड़ा विरोध इस बात को लेकर था कि किर्लियान चित्र केवल हस्तकृति या कला-तथ्य के बराबर हैं और वे पुनरावृत्ति के परीक्षण को सहन नहीं कर सकते या पुनरावृत्ति के प्रयोग पर प्रमाणित नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त वे तथ्य जो चित्रों को प्रभावित करते हैं, बहुत अधिक हैं और इस तरह की कलाकृतियों को उत्पन्न करते हैं। नमी उन प्रमुख तथ्यों में से एक तथ्य हो सकता है। एक शोधकर्ता ने तो यहां तक दिखाया कि हथेलियों का पसीना अच्छी तरह धो देने के बाद किर्लियान चित्र नहीं लिये जा सके।

वैज्ञानिक अनुसंधान की दिशा में जो आवश्यक आंकड़े चाहियें, उनके लिए बार-बार किये जानेवाले कठोर परीक्षणों में जो पूरा उतर सकता, तकनीकों या प्रणालियों का वह मानकीकरण स्थापित न हो सका। परिणामस्वरूप, सत्तर के बाद के बरसों में, किर्लियान को लेकर जो धूम-धड़ाका हुआ था, वह शांत हो गया और यह अनुसंधान प्रायः बंद हो गया।

यह १ मार्च १९८७ था, जब अमरीका में किर्लियान अनुसंधान के अग्रणी डा० डगलस डीन ने किर्लियान चित्रों पर चल रहे अपने अनुसंधानों और परिणामों को **ऊर्जा चिकित्सा** पर हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत किया। ये खोजें तनाव से होनेवाले प्रभाव, छाया प्रभाव, गेलर प्रभाव, जीवन की अंतिम घड़ियों में होनेवाले परिवर्तनों, बच्चे के स्वाभाविक जन्म आदि पर लागू होती थीं। उन्होंने दावा किया कि सारे ही चित्र ऐसे पृष्ठतल से लिये गये हैं जो नमी रहित थे।

१९८७ में मद्रास में ऊर्जा चिकित्सा पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इसे चुम्बक जीवविज्ञान संस्थान ने आयोजित किया था। इस सम्मेलन में इस बात को सामने लाया गया कि तथाकथित किर्लियान चित्र इन पृष्ठ तलों से निकलनेवाले सुपरिचित चिरपुरातन कोरोना (किरीटी) स्राव के परिणाम के सिवा अन्य कुछ नहीं हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस विलक्षण तथ्य को समझने के लिए फिर से रुचि पैदा हुई है और शोध में लगे अनेक वैज्ञानिकों ने अस्सी के बीच के बरसों से इस क्षेत्र में पुनः कार्य करना आरंभ कर दिया है।

कोरोना क्षेत्र की अन्योन्य क्रियाएं

डा० रमेश एस० चौहान और उनके दल के लोग इस क्षेत्र में उन तथ्यों को बाहर लाने और प्रस्तुत करने की दिशा में पथ-प्रदर्शक रहे हैं कि कोरोना स्राव एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्नता लिये होते हैं—और उसी व्यक्ति में

उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति पर भी निर्भर करते हैं। किर्लियान प्रयोगों से जुड़े अनेक परिवर्तनशील तत्त्वों को परिकलन और स्पष्टीकरण के लिए लिया गया है—जैसे अंगूठे का दबाव, नमी, तापमान आदि, जो चित्रों में भिन्नता के कारण बनते हैं और इस संदेह को जन्म देते हैं कि ये चित्र महज़ हस्त कला-कृतियां हैं। इन तत्त्वों के परिकलन ने मानकीकरण को कुछ दूर तक प्राप्त भी किया है। कैन्सर रोगियों के बहुत बड़ी संख्या में लिये गये चित्रों ने, जिन्हें हाथ धोकर या हाथ धोये बगैर लिया गया था, स्पष्ट रूप से यह दिखा दिया है कि कैन्सर के शीघ्र निदान के लिए इन चित्रों का उपयोग हो सकता है। यह एक पीएच० डी० शोधप्रबंध का सार है।

शोधकर्ताओं को अब वे उपाय या तरीके मिल गये हैं जिनसे वे संवेदनों और परीक्षणों के द्वारा इन स्रावों को सहजता से एकत्र कर सकते हैं और इन संकेतों को परिणामों के विश्लेषण और निरूपण के लिए कम्प्यूटर में भर सकते हैं। कम्प्यूटर-जनित इन अनेक परिणामों ने लगभग २५ वर्ष पहले किर्लियान के द्वारा आरंभ किये गये इस क्षेत्र में नये प्रतिमान बनाने शुरू कर दिये हैं।

आज जब विज्ञान स्वयं संक्रमण की स्थिति में है और नोबेल पुरस्कार से सम्मानित श्रेष्ठ वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मता और जटिल सुविज्ञता के नये क्षेत्रों में प्रवेश करना आरंभ कर दिया है, जैव वैद्युत अभिलेखन शायद पहले हर समय से ज्यादा प्रासंगिक और सुसंगत होता जा रहा है।

क्या ये किर्लियान चित्र महान् पुरुषों के सिर और मुख के चारों ओर लक्षित 'प्रभामंडल' का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे हमारे ऋषि-मुनि और योगी गुरु देखने में सक्षम थे और जिसे महान् कलाकारों एवं चित्रकारों ने अपनी कलाकृतियों में अत्यंत सुंदर रूप से चित्रित किया है? क्या हम इन चित्रों को प्राण या मन या चेतना से किसी भी रूप में सूत्रबद्ध कर सकते हैं?

क्या यह इस बात का प्रमाण है कि एक जीवित तंत्र या निकाय में भौतिक से परे, अणु-परमाणु से अलग भी कोई तत्त्व विद्यमान रहता है? ये चित्र या कम्प्यूटर से निकली वक्र रेखाएं कितनी दूर तक चिकित्सा संबंधी निदान के लिए, और भौतिक से इतर प्रभावों को जानने के लिए और जीवन या मृत्यु की परिघटना को समझने के लिए उपयोगी हो सकती हैं?

इन सवालों का जवाब देने के लिए अभी हमें लंबी दूरी तय करनी है। अभी विज्ञान को जीवन, मन, भाव-संवेदन, बुद्धि, अहंकार, चैतन्य आदि से जुड़े प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने और उनका उद्घाटन करने की दिशा में अपनी यात्रा आरंभ करनी है।

हमारे लिए यह जानकारी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि उपनिषदों में इन प्रसंगों और परिघटनाओं का विशेष उल्लेख है और प्राण से इनके संबंध का निर्देश किया गया है। तैत्तिरीय, प्रश्न और छान्दोग्य उपनिषद् शिष्यों द्वारा उठाये गये अनेक प्रश्नों, अनुसंधानों, प्रयोगों और परीक्षणों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिष्य भृगु हैं और मार्गदर्शक गुरु सुप्रसिद्ध महान् ऋषि वरुण हैं। भृगु संयोगवश वरुण के पुत्र भी हैं। शिष्यपुत्र भृगु को गुरुपिता वरुण की ओर से

सत्य की खोज के लिए यह निर्देश दिया जाता है :

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति ।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद् विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ।।३.१।।

तुम यह अनुसंधान करो कि ये सब प्राणी किससे उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर ये किसके द्वारा जीवित रहते हैं; ये कहां जाते और प्रविष्ट होते हैं—क्योंकि वह ब्रह्म है।

भृगु ने सर्वप्रथम जाना :

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् ।।३.२।।

कि अन्न ब्रह्म है—अन्न अर्थात् भौतिक तत्त्व। भृगु का यह पहला अनुसंधान आज के वैज्ञानिकों की खोज के साथ एक है।

जब भृगु पुनः वरुण के पास आये और ब्रह्मतत्त्व की जिज्ञासा प्रकट की, तब वरुण ने भृगु से और अधिक गहराई में जाकर रहस्य जानने के लिए कहा :

तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ।।३.२।।

तप द्वारा ब्रह्म का अनुसंधान करो। तप ब्रह्म है।

यह तप प्रयोगात्मक और अनुभवात्मक अन्वेषण है। इसके द्वारा उस परम सत्य तक पहुंचा जा सकता है और उसका अनुभव प्राप्त किया जा सकता है और यह अनुभव स्वयं ब्रह्म है।

भृगु ने तपस्या की और प्राण तत्त्व का अनुसंधान किया, जो सब प्राणियों के जीवन का आधार है और अन्न से अधिक सूक्ष्म है। यह तत्त्व भौतिक तत्त्व या द्रव्य की अपेक्षा अधिक मूलभूत और साररूप है तथा सारी सृष्टि को प्राणवन्त करता है।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् ।।३.३।।

भृगु ने प्राण को परम सत्ता ब्रह्म के रूप में जाना।

प्राणमय कोश

इसी उपनिषद् में एक ऐसे सूक्ष्म शरीर का वर्णन है जो हमारे भौतिक अन्नमय शरीर को व्याप्त किये रहता है। यह सूक्ष्म शरीर प्राणमय कोश है, इससे पूरा अन्नमय शरीर पूर्ण है—**अन्नोऽन्तर आत्मा प्राणमयः । तेनैष पूर्णः ।।२.२।।**

हमें वैदिक, यौगिक और तांत्रिक साहित्य में प्राणमय शरीर का विस्तार से उल्लेख

प्राणमय कोश

मिलता है। प्राणमय कोश की एक रूप रेखा में उसे भौतिक शरीर की समोच्च रेखा से बड़ा दिखाया गया है। पारंपरिक रूप से, महान् योगियों, महर्षियों के मुखमंडल एवं सिर के चारों तरफ जो प्रकाश का प्रभामंडल दिखाया जाता है—वह उस व्यक्ति के अत्यंत विकसित प्राणमय कोश को प्रकट करता है। सामान्य चर्म चक्षुओं से इस प्राणमय शरीर को नहीं देखा जा सकता। योगाभ्यास द्वारा विकसित अंतः चक्षुओं के द्वारा इस प्राणमय शरीर के दर्शन होते हैं। योग के क्षेत्र में विशेष स्थितिप्राप्त साधकों को इस प्रभामंडल को देखने की क्षमता प्राप्त होती है। इसे 'प्रभामंडलीय दर्शन' कहा जाता है। जब हम 'जैव विद्युत अभिलेखन' और किर्लियान फोटोग्राफी के अनेक पक्षों का विचार करते हैं, तब हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम इस प्राणमय शरीर और इसकी संरचना के रहस्यों का उद्‌घाटन करने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

प्राण का गतिविज्ञान या (शरीर) क्रिया विज्ञान प्राणमय कोश में होनेवाले विभिन्न प्रकार्यों का वर्णन प्रस्तुत करता है। स्थूल भौतिक शरीर (अन्नमय कोश) में होनेवाले प्रकार्यों से उनका क्या संबंध है (जिनके बारे में उपनिषद् ग्रंथ बहुत गहराई और विस्तार से कथन करते हैं), वह यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

वरिष्ठ एवं पञ्च प्राण

जिसे हम संपूर्ण सृष्टि का मूल संरचक तत्त्व कहते हैं, वह **वरिष्ठ प्राण** स्वयं को प्राणमय कोश में पांच प्रमुख रूपों में प्रकट करता है—**प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानश्च पञ्चमः**—शरीर में इन पांचों प्राणों का निवासस्थान इस प्रकार है :

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः ॥शिवसंहिता, ३.७॥

प्राण का निवास हृदय में है, अपान का गुदा में। समान नाभि के ऊपरी क्षेत्र में रहता है, उदान कण्ठ में और व्यान सारे शरीर में गतिशील रहता है।

वरिष्ठ प्राण

प्राण अपान समान उदान व्यान

प्राण शब्द निरंतर गतिशीलता का सूचक है। यह गुण प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान **सब** में निहित है और इस प्रकार ये पांचों प्राण या पांचों वायु निरंतर गतिमयता को प्रकट करते हैं। वायु **प्रवहण** (प्रवाहित होना) का प्रतीक है, इसलिए **अथर्ववेद** में एक वायु का नाम ही **प्रवहण** है।

प्रश्नोपनिषद् में इन पञ्च प्राणों को परिभाषित किया गया है।

पञ्च प्राण

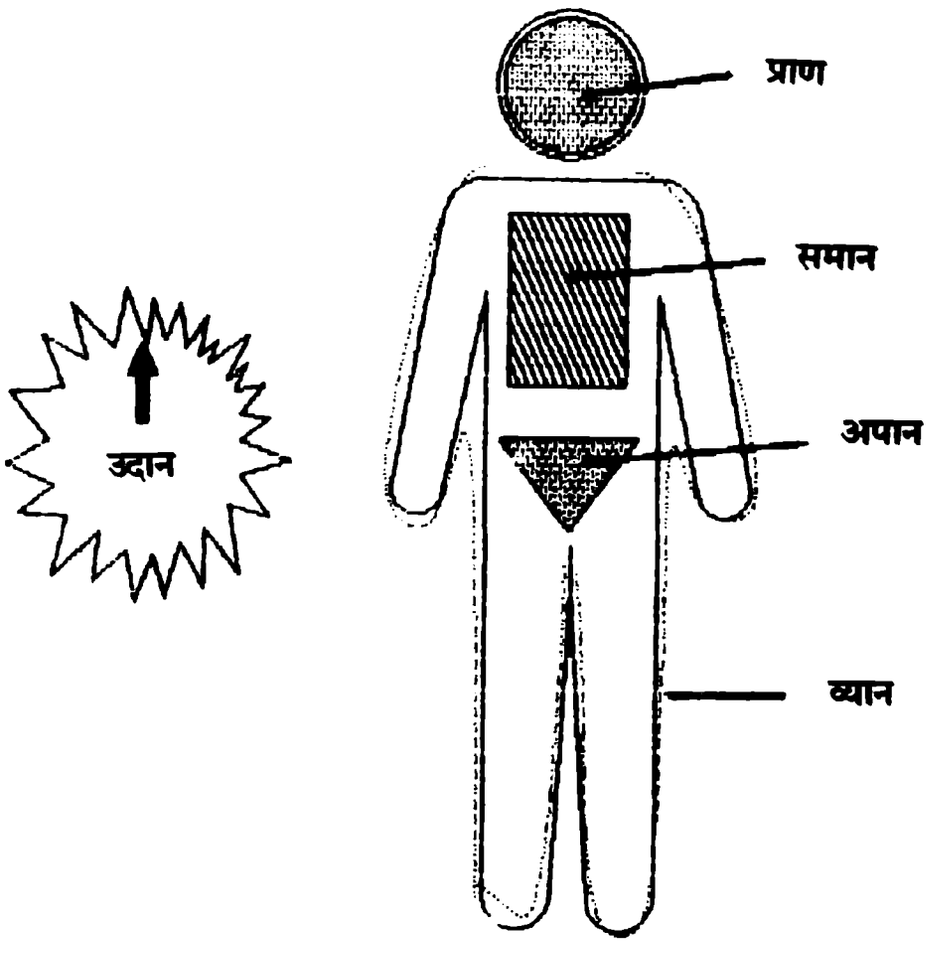

प्राण, अपान और समान

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥३.५॥

अपान

यह गुदा और उपस्थ में रहता है तथा मल-मूत्र एवं शुक्रीय विसर्जन के कार्य से जुड़ा है। आंख, कान, मुख, नासिका में प्राण ने स्वयं को प्रतिष्ठित किया है—दर्शन, श्रवण, रसास्वाद, सूंघने और श्वास लेने के रूप में।

समान

समान मध्य में है और प्राण एवं अपान के बीच का संतुलन रखता है। यह समान ही है जो आहूत अन्न को समान रूप से वितरित करता है; क्योंकि इससे सप्त अग्नियां उत्पन्न होती हैं। पाचन-क्रिया समान के नियंत्रण में है।

इस प्रकार शरीर क्रियाविज्ञान की सप्तगुणी क्रियाएं प्राण के इन तीन रूपों—**प्राण, अपान, समान**—के द्वारा संपन्न होती हैं।

व्यान

अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडी-सहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ।।३.६।।

हृदय में एक सौ एक नाड़ियां हैं और उनमें हर नाड़ी की सौ शाखा नाड़ियां हैं और हर शाखा नाड़ी की बहत्तर हज़ार प्रतिशाखा नाड़ियां हैं। इन सबमें व्यान संचरण करता है। व्यान स्पर्श इन्द्रिय का नियामक है और नाड़ियों में आवेगों के प्रवाह को नियंत्रित करता है।

उदान

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति ।
पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ।।३.७।।

और जो ऊपर की ओर बहता है, वह **उदान** है। यह पुण्य के द्वारा पुण्यलोक में ले जाता है और पाप के द्वारा पाप लोक में। और जहां पाप और पुण्य दोनों हैं, वहां यह मनुष्य लोक में ले जाता है।

उदान ऊपर की तरफ होनेवाली समस्त शारीरिक क्रियाओं के लिए जिम्मेदार है। जैसे क्रमाकुंचन रोधी क्रियाएं, डकार और वमन आदि।

प्राणमय कोश में **उदान** मध्य मुख्य नाड़ी सुषुम्ना के बीच संचरण करता है। सुषुम्ना को कुंडलिनी शक्ति भी कहते हैं। सामान्य मनुष्यों में यह नाड़ी सोये हुए सर्प की तरह बंद रहती है। साधना के अभ्यास से या किसी शक्तिसंपन्न गुरु की कृपा से इसका जागरण होता है। तब उसके भीतर उदान वायु प्रबल वेग से सक्रिय हो उठता है और साधक को ऊर्ध्व दिशा में ले जाता है। यह उदान वायु की विशेष क्रिया है। पर सामान्य रूप में उदान वायु सभी में क्रियाशील रहता है और शारीरिक मृत्यु के समय जीवात्मा को जीवनकाल में किये शुभाशुभ कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक में ले जाता है। जब स्वर्ग और नरक के लिए उत्तरदायी पुण्य और पाप का 'असंतुलन' समाप्त हो जाता है या पुण्य और पाप दोनों का ही सह अस्तित्व होता है तब उसे यह मर्त्यलोक या मनुष्यलोक प्राप्त होता है। उदान संवाहक का कार्य करता है।

उदान को प्रकाशमय कहा गया है, **तेजो ह वा उदानः** । इस तेज के शांत होने पर सब इन्द्रियां मन में विश्राम ले लेती हैं और मनुष्य अन्य जन्म में चला जाता है :

. . . तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ।।प्रश्नोपनिषद् ३.९।।

यह प्रकाश मृत्यु के समय क्षीण हो जाता है और जन्म के समय पुनः वापस लौट आता है। मनुष्य का मन कैसा भी क्यों न हो, वह उसी मन से मृत्यु के समय श्वास रूपी

प्राण में शरण खोजता है और यह प्राण और उदान वायु उसे उसकी आत्मा के साथ उसके संकल्पित लोक में ले जाता है।

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः। सहात्मना यथासङ्कल्पितं लोकं नयति ।।३.१०।।

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान **वरिष्ठ प्राण** के पांच क्रियात्मक रूप हैं। जैसे कोई सम्राट् अपने अधिकारियों को नियुक्त करता है और उनसे अलग-अलग कहता है—तुम मेरे लिए इन ग्रामों का शासन करो, और तुम मेरे लिए इन ग्रामों का कार्यभार संभालो—वैसे ही यह प्राण (**वरिष्ठ प्राण**) अन्य प्राण, अपान आदि सब प्राणों को अलग-अलग क्षेत्रों में नियुक्त करता है :

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते। एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक्पृथगेव सन्निधत्ते ।।प्रश्नोपनिषद् ३.४।।

वरिष्ठ प्राण के ये पांचों क्रियात्मक रूप संरचना की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं पर शरीर के अलग भागों में अलग ढंग से कार्य करते हैं। जैसे इस भौतिक जगत् में एक ही वैद्युत ऊर्जा प्रकाश, ताप और चुम्बकीय कार्यों की कारण है, वैसे ही एक ही प्राण शरीर में अलग-अलग प्रभावों और कार्यों का कारण है। ये पंच प्राण एक ही प्राण की पांच मुख्य शाखाएं हैं। जैसे प्रकाश और ऊष्मा का अप्रत्यक्ष आधार विद्युत है, वैसे ही अन्नमय कोश नाम से जाने जानेवाले हमारे स्थूल शरीर के सारे ही शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कार्यों का आधार प्राण है।

उपप्राण

पंच प्राणों का आवास प्राणमय शरीर में है। ये हमारे भौतिक शरीर में शारीरिक क्रियाओं के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। उप प्राण पंच प्राणों के सहायक पूरक प्राणों के रूप में काम करते हैं। ये पांच उपप्राण **नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त** और **धनंजय** नाम से जाने जाते हैं।

शिवसंहिता और **दक्षिणामूर्तिस्तोत्र** में पंच प्राण और पंच उपप्राणों को संयुक्त रूप से **दशप्राण** की संज्ञा दी गयी है।

जिस प्रकार लोकों को **प्रवहण** आदि वायु धारण करते हैं, वैसे ही शरीर को प्राण, अपान आदि दस वायु धारण करते हैं।

नाग आदि पांच उपप्राणों का कार्य इस प्रकार है :

- **नाग** उपप्राण हिचकी लाता है तथा डकार के द्वारा पेट के भार को हल्का करता है।
- **कूर्म** आंखों के खुलने-बंद होने का कार्य करता है तथा पलकों और तारकों के आकार को नियंत्रित करता है।
- **कृकर** छींक और कफ की प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करता है।
- **देवदत्त** जंभाई का कार्य करता है।
- **धनंजय** प्रसार या फुलाव का कार्य करता है और मृत शरीर का भी त्याग नहीं करता है।

पंच उपप्राणों में **धनंजय** का कार्य इस **अर्थ** में विशिष्ट है। **घेरण्ड संहिता** में इसे **सर्वव्यापी** माना गया है जो कभी भी शरीर का त्याग नहीं करता है—**न जहाति मृते क्वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ।।५.६४।।** यह क्षणमात्र के लिए भी अलग नहीं होता **है—क्षणमात्रं न निःसरेत् ।।५.६५।।**

प्राणायाम

प्राण का आयाम प्राणायाम है। 'आयाम' का अर्थ है दीर्घता और विस्तार। नियंत्रण करना, रोकना और खींचना आदि भी 'आयाम' शब्द के परिचायक अर्थ हैं। प्राणायाम का प्राण शब्द प्राण और अपान दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो श्वास-प्रश्वास की क्रिया से संबंधित है। **पूरक** (प्राण का श्वसन-कार्य), **रेचक** (अपान का प्रश्वसन-कार्य) और इन दोनों के बीच वायु का रोध या निरोध (कुम्भक), जिसे अन्यत्र **स्तम्भन** भी कहा गया है प्राणायाम के क्षेत्र में आता है। **दक्षिणमूर्तिस्तोत्र में** प्राणायाम को **प्राणसंयम** की संज्ञा दी गयी है :

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्राणसंयमः ।।९.२७।।

प्राण की निश्चलता से चित्त स्वाभाविक रूप से शांत उपराम स्थिति को प्राप्त करता है। अनेक प्रकार के मल और क्लेश मानवचित्त की उद्विग्नता का कारण हैं—प्राणायाम इन सारे दोषों को अकेला ही दूर कर देता है :

प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति ।। हठयोगप्रदीपिका २.३७।।

योगप्रणालियों का बहुत बड़ा क्षेत्र प्राणायाम के अन्तर्गत आता है। **प्राणायाम** योग की एक योजनाबद्ध प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम प्राण (**वरिष्ठप्राण**) के साथ सामंजस्य प्राप्त करते हैं। मूलभूत प्राण सत्ता के साथ यह सामंजस्य किसी एक प्राण या सभी प्राणों और उपप्राणों पर अधिकार प्राप्त करके पाया जा सकता है।

प्राणायाम की विशद अवधारणा

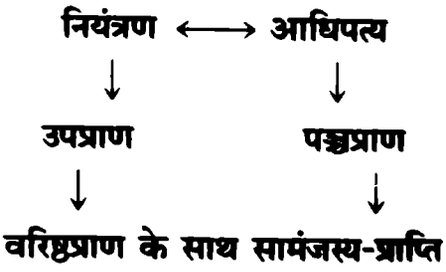

वरिष्ठ प्राण के साथ सामंजस्य-प्राप्ति का अर्थ है उस सामर्थ्य की प्राप्ति, जो प्राण-स्पंदन की आवृत्ति को घटा या बढ़ा सकती है और इस तरह प्राण के विराट् फलक पर, खनिज जगत् से लेकर ब्रह्मलोक तक स्वातंत्र्य के साथ संचरण कर सकती है। जैसे-जैसे प्राण सत्ता पर आधिपत्य बढ़ता है, स्वतंत्रता भी बढ़ती है। यह एक ऐसी सामर्थ्य या स्वातंत्र्य-शक्ति है, जो मानव-स्तर से नीचे के स्तरों तक (खनिज, वनस्पति, पशु आदि) स्थूल हो सकती है, और महान् अतिमानव शिखरों तक आरोहण करके संचरण कर सकती है।

प्राणायाम

पञ्च प्राण	उपप्राण	योग अभ्यास का नाम
प्राण	देवदत्त	रूढ़ि या परंपरागत प्राणायाम
	धनंजय	
	कूर्म	त्राटक
समान	कृकर और नाग	क्रिया, बंध
अपान		क्रियायोग, बंध
व्यान		शवासन, योगनिद्रा और मुद्रा
उदान		कुंडलिनी योग

प्राण पर नियंत्रण दो उपप्राणों, **देवदत्त** और **धनंजय,** को भी शामिल करता है और यह प्राणायाम के सामान्य क्षेत्र में आता है जिसमें हम श्वास का संयमन करते हैं। जिन अभ्यासों के द्वारा **समान** पर आधिपत्य प्राप्त किया जाता है, वे **क्रिया** (हठयोग की षट् क्रियाएं) और **बंध** (विशेष रूप से उड्डीयान बंध, जो पाचन शक्तियों का नियंत्रण करता है) शीर्षक के अंदर आते हैं।

अपान पर और उसके साथ **वरिष्ठ प्राण** पर आधिपत्य प्राप्त करना **क्रियायोग** में संपन्न होता है। इसमें अपान को ऊपर की तरफ खींचना और इसे आहुति की भांति प्राण

को अर्पित करने का अभ्यास किया जाता है। **मूलबन्ध** उन बन्धों में से एक है जिसका उपयोग इस प्रयोजन के लिए किया जाता है। (क्रियायोग को वाराणसी में युक्तेश्वर गिरि महाराज ने विशेष रूप से उपयोग किया था और उनके शिष्य श्रीयोगानन्द ने विश्व में इसका प्रसार किया)।

स्पर्श इन्द्रिय **व्यान** पर और उससे **वरिष्ठ प्राण** पर आधिपत्य प्राप्त करना गहन प्रशमनकारी योग प्रणालियों द्वारा संपन्न होता है—जैसे शवासन, योगनिद्रा आदि। मुद्राएं भी व्यान को संवेदनशील बनाने में सहायक होती हैं और वे इसके संचरण पर नियंत्रण करने में मदद करती हैं।

उदान और इसका नियंत्रण एवं विकास **कुंडलिनी योग** का विषय है और साधना की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि **प्राणायाम** अपने सामान्य अर्थ के अंदर योगप्रणालियों के बृहत् क्षेत्र को व्याप्त करता है। यों, प्राणायाम का प्रचलित और पारंपरिक अर्थ है श्वास के नियंत्रण से प्राण द्वारा वरिष्ठ प्राण तक पहुंचना और उसपर आधिपत्य प्राप्त करना। प्राणायाम के इसी रूप को इस पुस्तक में विशेष स्थान दिया गया है तथा जानने और समझने का प्रयत्न किया गया है, जब कि प्राणायाम के दूसरे पक्षों का उल्लेख भी संक्षेप में किया गया है जो इस विषय के व्यापक परिज्ञान और समझ के लिए आवश्यक हैं और योग के जिज्ञासु पाठकों के लिए उपयोगी हैं।

अध्याय ४

शरीर और मन का सेतुबन्ध

शरीर-मन सदियों से एक ऐसी समस्या रहे हैं जिनपर सबसे अधिक विचार हुआ है और जो आज भी जिज्ञासा का विषय बने हुए हैं। एक अदेखा अप्रत्यक्ष सूक्ष्म मन किस तरह अपने को इस स्थूल भौतिक शरीर से जोड़े हुए है—यह आज भी हमारे कौतुहल का कारण है।

सूक्ष्म और स्थूल के बीच की कड़ी

प्रौद्योगिकी के इस युग में एक आधुनिक मनुष्य के लिए बेतार-संचार एक साधारण घटना है, स्पुट्निक एवं रोबोट या सुदूर नियंत्रण (रिमोट कन्ट्रोल) द्वारा अन्तरिक्षयान का चांद पर गतिशील होना अब किसी के लिए भी उतने कौतुहल का विषय नहीं है जितना कुछ दशाब्दियों पहले था।

उपनिषद् के ऋषियों और योग के आचार्यों को इस बात का ज्ञान था कि मन किस प्रकार प्राण के माध्यम से भौतिक शरीर में अनेक क्रियाओं को नियंत्रित और नियमित करने के लिए कार्य करता है। तंत्रिका जीव वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क में ऐसे कुछ स्थानों का पता लगाया है, जिनके प्रवर्तन द्वारा (सुदूर नियंत्रण के माध्यम से विद्युत-संकेतों द्वारा) हास, क्रोध, शांति जैसे विभिन्न भावों का आह्वान किया जा सकता है। उत्तेजित हाइपोथैलेमस पूरे शरीर में प्रतिक्रियाओं को इतने शृंखलाबद्ध रूप से प्रस्तुत कर सकता है जो शरीर को 'लड़ो या भागो' की प्रतिक्रिया के लिए तैयार करती हैं। अदृश्य चुम्बकीय शक्तियां भौतिक पदार्थों को संचलनशील कर सकती हैं। वैसे ही मन प्राण के विभाजन को बदलकर उसके द्वारा स्थूल भौतिक शरीर में विभिन्न क्रियाओं को प्रभावित करता है। मन और प्राण, संरचना की दृष्टि से या मूलतया, एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। जैसा कि हमने देखा है मुख्य प्राण सूक्ष्मतर होता हुआ अपने को मन, बुद्धि और अहंकार के रूप में प्रकट करता है। इस तरह **मन और पञ्च प्राण**—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—के बीच गहरा संबंध है। जब मन क्षुब्ध या परेशान होता है तब प्राण भी उद्विग्न हो उठता है—श्वास में बेतरतीबी और असंतुलन इस बात के प्रमाण हैं।

श्वास में होनेवाले असंतुलनों से शरीरसंबंधी क्रियाओं में बाधा आती है और वे रोग बन जाते हैं। दमा, अतितनाव, दाहक आंत संलक्षण, आधासीसी दर्द, अति अम्लता आदि रोग इन्हीं असंतुलनों का परिणाम हैं। ये बीमारियां पञ्च प्राणों को बाधित करती हैं, फिर मन को और वरिष्ठ प्राण को, और इस तरह ये अपने को दोहराती चली जाती हैं। इनकी बारंबारता बीमारी के स्तर को बढ़ा देती है, स्थिति गंभीर हो जाती है। इस अनिष्टकारी चक्र को या तो औषध विज्ञान के हस्तक्षेप से या योग प्रणालियों के अभ्यास से तोड़ा जा सकता है।

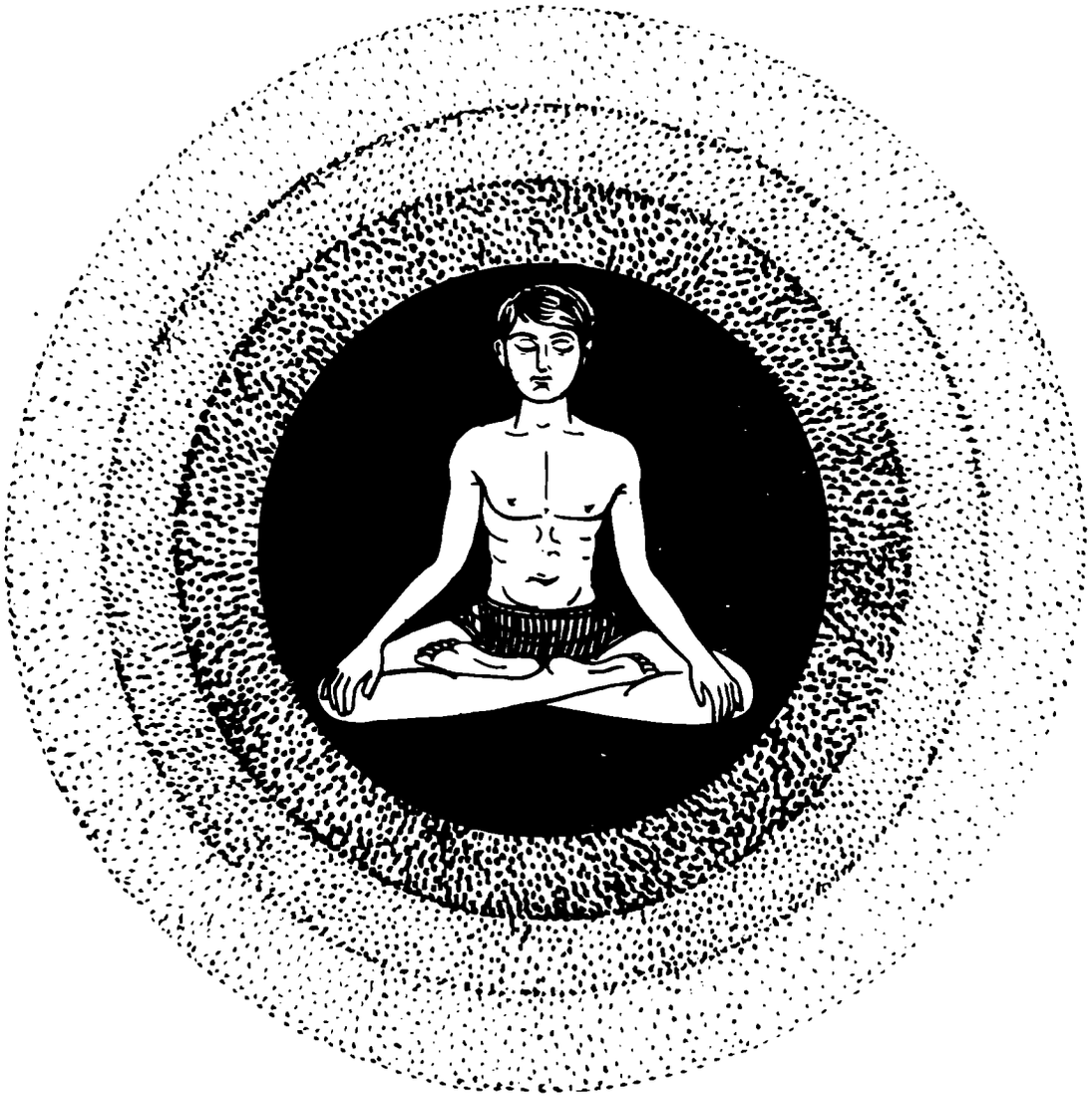

मनुष्य का पंचमुखी अस्तित्व

शरीर-मन-संयोजन

प्राणायाम शरीर के अंदर एवं प्राणमय कोश में पंचप्राणों के कार्य को प्रणालीबद्ध रूप से सुव्यवस्थित करने का विज्ञान है। यह विज्ञान शरीर-मन से जुड़ी समस्याओं, जिज्ञासाओं और सवालों का केवल उत्तर ही नहीं देता, बल्कि इन आंतरिक प्राणीय शक्तियों को समझने और इनपर नियंत्रण पाने में भी मदद करता है। प्राणायाम अपनी विस्तृत परिभाषा के रूप में या अर्थ में कुंडलिनी योग एवं क्रियायोग सहित योग-प्रणालियों के विशाल क्षेत्र को व्याप्त करता है। पारम्परिक रूप में प्राणायाम प्राण के ऊपर नियंत्रण पाने के लिए श्वास पर कार्य करता है और मन को प्रशमन की स्थिति में ले जाता है तथा वरिष्ठ प्राण के साथ सामंजस्य प्रदान करता है।

पारम्परिक प्राणायाम

श्वास-नियंत्रण प्राण पर नियंत्रण मन-प्रशमन वरिष्ठ प्राण-सुसंगति

पतंजलि के अनुसार प्राणायाम वह है जिसके द्वारा अन्तःश्वसन और बहिःश्वसन के बीच श्वास की गति को रोध या विराम का विच्छेद देकर नियंत्रित किया जाता है :

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।।योगसूत्र २.४९।।

प्राणायाम में गति का यह विच्छेद अथवा विराम विशेष महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार, पारंपरिक प्राणायाम को समझने के लिए, जब हम श्वास पर प्रभुत्व प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहते हैं, तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपने श्वास-तंत्र की संरचना और कार्य-पद्धति का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें। यह संपूर्ण श्वसन-प्रणाली का ज्ञान है।

स्वैच्छिक का अनैच्छिक के साथ सेतुबन्ध

हमारे श्वसन तंत्र की मुख्य विशेषता है कि यह स्वैच्छिक और अनैच्छिक दोनों है। और इसलिए, यह एक उपयुक्त तंत्र है जिसके द्वारा हम स्वैच्छिक (शरीर के क्रिया विज्ञान का प्रत्यक्ष सरल जागरूक नियंत्रण) से अनैच्छिक (शारीरिक क्रियाओं के वे परोक्ष क्षेत्र, जिनपर हमारा बहुत कम नियंत्रण है) तंत्र की दिशा में अर्थात् ज्ञात से अज्ञात की तरफ संचरण कर सकते हैं। स्वैच्छिक क्रियाएं किस प्रकार अनैच्छिक क्रियाओं में परिवर्तन लाती हैं, यह मस्तिष्क पर किये गये अनुसंधानों द्वारा भली प्रकार समझ लिया गया है।

श्वसन का तन्त्रिकी नियंत्रण

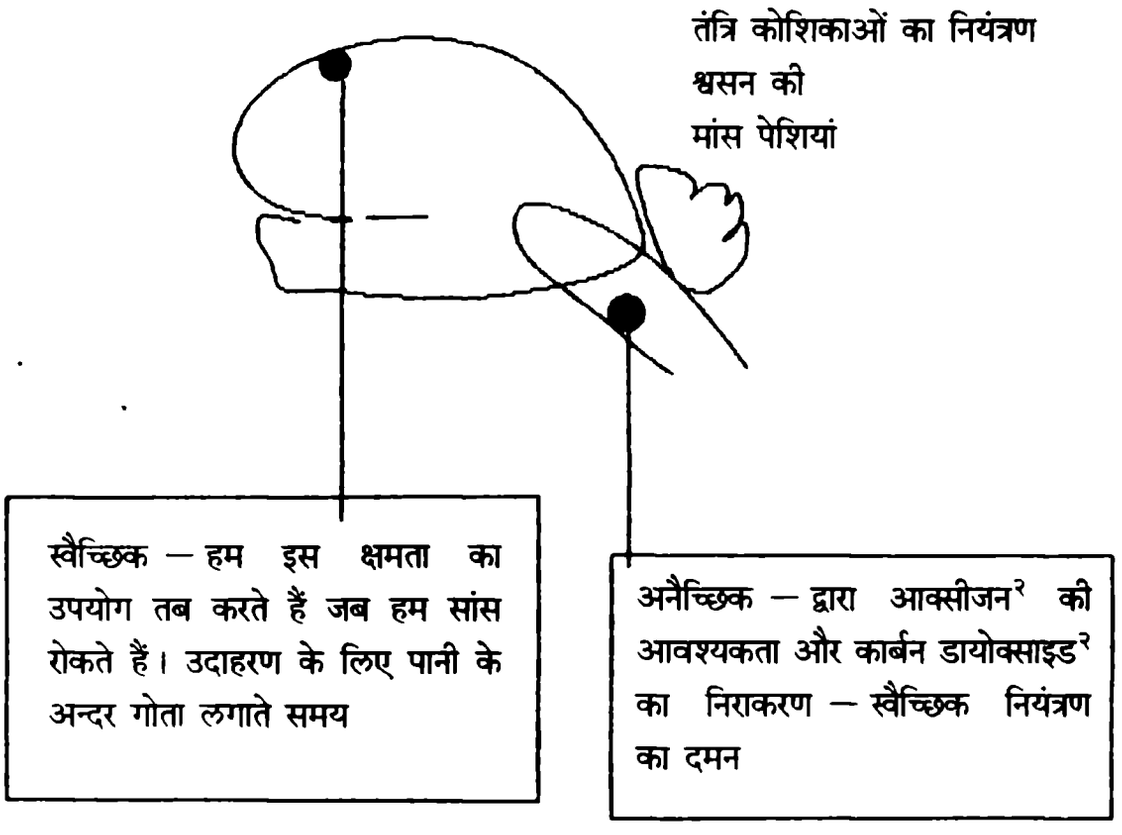

मस्तिष्क के उच्चतर केन्द्र ऐसे यंत्र हैं जिनके माध्यम से वरिष्ठ प्राण, मन और प्राण कार्य करते हैं। जहां तक भौतिक शरीर का संबंध है, मस्तिष्क का वह क्षेत्र जो नव वल्कुट कहलाता है, सबसे अधिक विकसित है और मस्तिष्क का सूक्ष्मतम स्थान है। ये उच्चतर केंद्र जिनमें श्रेष्ठतम सृजनात्मकता और मेधा का चित्रण है, निम्नवर्ती मस्तिष्क का नियंत्रण तो करते ही हैं, साथ ही समग्र शरीर क्रिया विज्ञान का नियंत्रण भी करते हैं। ये उच्चतर केंद्र सामान्यतया मध्यवर्ती मस्तिष्क के माध्यम से काम करते हैं तथा इनमें नियंत्रण की वह क्षमता मौजूद है जो निम्नवर्ती मस्तिष्क की क्रियाओं को भी परिवर्तित कर सकती है।

हाइपोथेलेमस मध्यवर्ती मस्तिष्क के ऊपर स्थित है। यह निचले मस्तिष्क का अधिपति है और शरीर में सारी स्वचालित क्रियाओं का नियंत्रण और संचालन करता है। यह संपूर्ण शरीर क्रिया विज्ञान को बदलने के लिए अपने दो विशेष मातहतों के द्वारा कार्य करता है : **स्वचालित तंत्रिका तंत्र** और **अंतःस्रावी तंत्र**। हमारी सारी शरीर-क्रियाएं मस्तिष्क के अधिपति हाइपोथेलेमस के कारण स्वतः चलती रहती हैं। इस स्वचालित नियंत्रण के द्वारा सामान्य श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक रूप से चलता रहता है। नीचे के मस्तिष्क में इस नियंत्रण का आवास है।

यदि अनैच्छिक क्रियाएं दीवार घड़ी के काम की तरह चलती रहें, जो अधिपति हाइपोथेलेमस के द्वारा व्यवस्थित होती हैं, तब मस्तिष्क के उच्चतर केंद्र 'स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र' के माध्यम से स्वैच्छिक क्रियाओं का विनियमन करते हैं। 'स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र' और हाइपोथेलेमस के बीच का संयोजन मूलतया मस्तिष्क के उच्चतर केंद्रों के माध्यम से है और यह साधारण आम आदमियों में बहुत क्षीण और कमज़ोर होता है। श्वसन-तंत्र भी इस स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र की तंत्रिकाओं से ही स्वाभाविक रूप से संयुक्त है। इसलिए हम श्वास की गति, लय और रचना आदि को स्वैच्छिक रूप से अपनी संकल्पशक्ति को उस ओर प्रेरित करके बदल सकते हैं, और ऐसा हम तत्त्वतः स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र द्वारा 'हाइपोथेलेमस के स्वचालित नियंत्रण' को अभिभूत करके कर सकते हैं।

श्वसन तंत्र की स्वचालित और स्वैच्छिक क्रियाएं

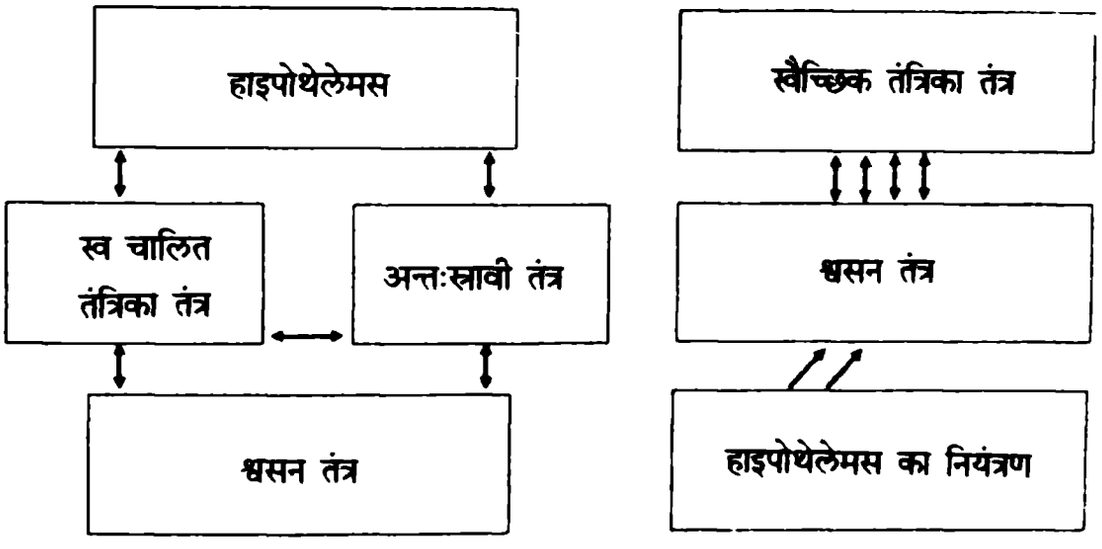

(अ) स्वचालित क्रिया (ब) स्वैच्छिक क्रियाएं

स्वैच्छिक से अनैच्छिक तक

सुनियोजित क्रम से श्वास की गति और लय को स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र के द्वारा नियमित करने से स्वचालित क्रियाओं में भी अंतर आयेगा। श्वसन तंत्र की विक्रियाएं इस प्रकार ठीक की जा सकेंगी। प्राणायाम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा इस संशोधन या सुधार को प्रभावशाली रूप से लाया जा सकता है। अधिक महत्त्वपूर्ण है मस्तिष्क के उच्चतर केंद्रों की क्षमताओं को समझना और उनपर तथा प्राण एवं मन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्हें प्रयुक्त करना। यही प्राणायाम का उद्देश्य है। पर प्रश्न है कि यह तंत्रिका तंत्र श्वास को कैसे नियंत्रित करता है ? इसे हम श्वसन तंत्र के क्रिया विज्ञान और अवयव-संरचना के ज्ञान का विश्लेषण करने से भली प्रकार समझ सकते हैं।

श्वसन तंत्र

यह श्वास ही है जिसके द्वारा शरीर का हर कोशाणु ऑक्सीजन प्राप्त करता है और साथ ही ऑक्सीकरण या उपचयन से उत्पन्न होनेवाले उत्पाद से मुक्ति पाता या बाहर आता है। ऊतकों के कार्बन और हाइड्रोजन से युक्त ऑक्सीजन हर एक कोशाणु की उपापचयी प्रक्रिया को अग्रसर होने के योग्य बनाता है और परिणाम स्वरूप वह कार्य संपन्न हो जाता है और कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में अपशिष्ट उत्पाद और जल अलग हो जाते हैं। श्वसन एक दुहरी प्रक्रिया है जिससे गैसों का विनिमय घटित होता है। कोशाणुओं में होनेवाले इस विनिमय को अंतर-श्वसन कहते हैं तथा फेफड़ों में इसे बाह्य श्वसन कहा जाता है। अंतःश्वसन के दौरान वायु को फेफड़ों के अंदर खींचा जाता है और निःश्वसन या प्रश्वास के दौरान इसे फेफड़ों से बाहर निकाल दिया जाता है। वायु श्वसन-मार्गों के द्वारा अंदर प्रवेश करती है, जो गणनीय हैं और जिनके शारीरिक अवयवों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

श्वसन मार्ग :
शारीरिक अवयव

नासिका

नाक एक नासा-पट के द्वारा दो नासा-छिद्रों में विभक्त है। यह विभाजन प्रायः असमान है। यह विभाजक पट और नाक की पार्श्व दीवारें दोनों ही अपने निचले हिस्सों में उपास्थियों से और अपने ऊपरी हिस्सों में पतली सपाट अस्थियों से बनी होती हैं।

नाक की अस्थिमय पार्श्व दीवार से निकली अस्थियों की तीन पट्टियां जिन्हें लट्टू रूपी हड्डियां कहा जाता है, नासा-शंखिका का निर्माण करती हैं।

नाक का बाह्य छिद्र (अग्रवर्ती तंत्रिकाएं) नाक के प्रघाण में खुलता है। इस प्रघाण का अन्तर-आस्तर बना रहता है और वह नीचे की ओर प्रक्षिप्त होता है। नाक की गुफाएं बहुत अधिक संवहन श्लेष्मल झिल्लियों से भरी रहती हैं जो ग्रसनी और परा नासा कोटरों के साथ चालू रहती हैं। यह आस्तर कोशाणुओं की इकहरी पर्त से बना होता है, जिसमें रोम की तरह छोटे मुलायम बाल निकले होते हैं। यहां बड़ी संख्या में श्लेष्मल स्रावी कोशिकाएं होती हैं जो नासा श्लेष्मिका के पास छितरायी रहती हैं। इस नासा श्लेष्मिका से एक पतला पारदर्शी तरल निकलता है जो सतह को नरम और लसलसा बनाये रखता है।

घ्राण तंत्रिकाओं के तंतु उन छोटी ग्राही कोशिकाओं से निकलते हैं जो नासा गुहा के ऊपरी हिस्से में श्लेष्मल झिल्ली में छितरी रहती हैं। ये तंत्रिका अन्त्य वे बिन्दु हैं जो घ्राण के संवेदन को ग्रहण करते हैं। इन विशेष संवेदी तंत्रिका अन्त्यों के अतिरिक्त वहां स्पर्श और दर्द के संवेदनशील तंत्रिका अन्त्य हैं जो नासा आस्तर में विभाजित हैं और जो छींकों के रक्षक प्रतिवर्त में मदद करते हैं।

नासिका के कार्य

नाक कमरे में लगे एयरकंडीशनर की तरह तीन प्रधान कार्य करती है—शुद्धिकरण, तापमान का नियंत्रण और नमी का नियंत्रण। इसके अतिरिक्त है घ्राण अर्थात् सूंघना।

(१) **श्वास के द्वारा अंदर गयी हवा को छानना** : नीचे की तरफ प्रक्षेपित बाल, नासा शंखिका की विदरिकाएं और विशाल श्लेष्मल झिल्ली की सतह पर चिपचिपा श्लेष्मल हवा को छोटे और बड़े प्रदूषकों से मुक्त करता है।

(२) **हवा का पुनः तापन** : हवा जब विषम नासा-मार्ग से गुज़रती है, तब उसे मार्ग की लंबाई के कारण तापमान नियंत्रण के लिए काफी समय मिलता है, इसलिए वह शरीर के तापमान के अनुरूप गर्म हो जाती है और ऐसा विशाल श्लेष्मलीय सतह के संपर्क में ताप के विनिमय से होता है।

(३) **नमीकरण** : नासा श्लेष्मिका की विशाल सतह की नमी का वाष्प श्वास से अंदर ली गयी हवा को नम कर देता है।

(४) **घ्राण का संवेदन** : यह नासा-आस्तर में अन्त्य अवयवों के द्वारा ग्रहण किया जाता है और विद्युत क्रिया को घ्राण तंत्रिका के द्वारा वहन किया जाता है।

छींक का प्रतिवर्तन

यह एक रक्षक प्रतिवर्त है जो हवा में निहित उत्तेजक या प्रदाहात्मक तत्त्वों को निकालता है और इस तरह उन्हें फेफड़ों में जाने से रोकता है।

छींक का प्रतिवर्तन

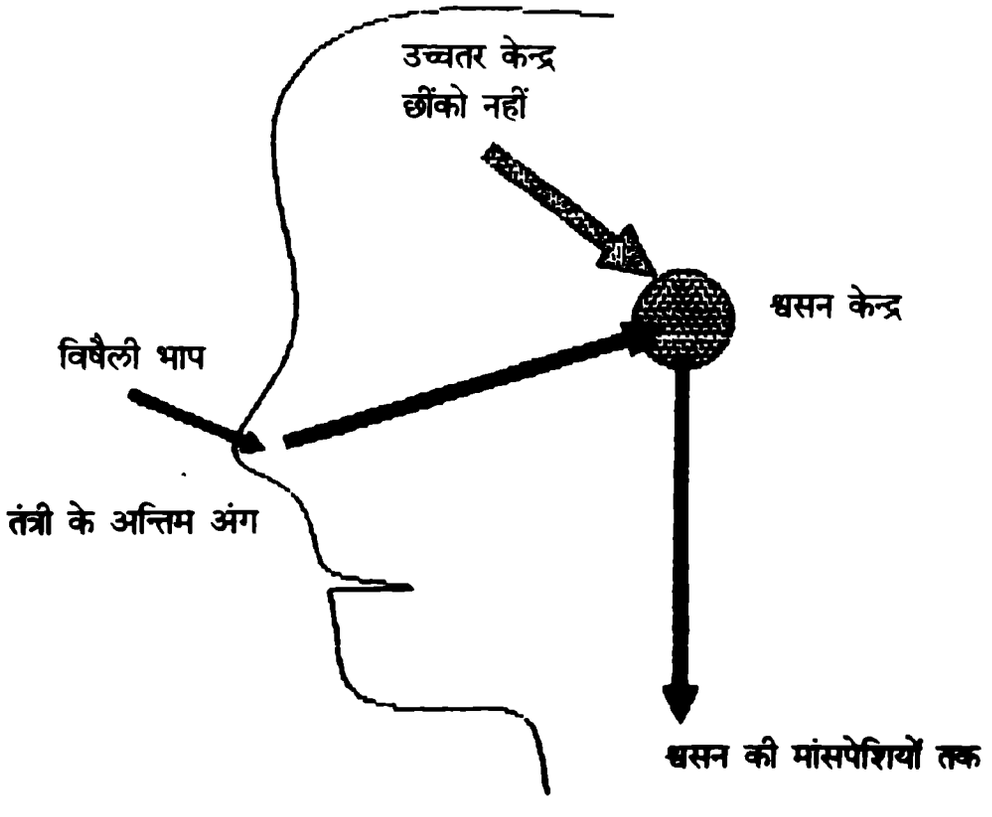

प्रतिवर्त चाप में एक अन्त्य अंग होता है जो संदेश लेता है, अभिवाही तंत्रिका जो सूचना को केंद्र तक ले जाती है, अपवाही मार्ग जो केंद्र से सूचना को कार्यकर अंग तक ले जाता है, जो इस कार्य का संपादन करता है। यहां स्पर्श संवेदी तंत्रिका का (संवेदी अंग) ही अन्त्य अंग है जो नासा आस्तर में विभक्त है और जो संवेदी तंत्रिका (अभिवाही) के साथ विद्युत आवेगों का एक व्यूह भेजता है। जब कभी अंदर ली गयी श्वास में तेज़ उत्तेजक तत्त्व होते हैं, सूचना छींक केंद्र तक पहुंच जाती है, जो मस्तिष्कीय स्तंभ में तंत्रिका कोशिकाओं का समूह है। यहां से संदेश प्रेरक तंत्रिकाओं (अपवाही) के साथ वक्ष की समस्त पेशियों (कार्यकर अंग) को भेज दिया जाता है कि वे बलपूर्वक सिकुड़ सकें ताकि समस्त श्वसन पेशियों के ज़ोरदार समन्वित संकुचन के कारण गहरी लंबी सांस ली जाये और ज़ोरदार प्रश्वसन के द्वारा नाक और मुंह से उत्तेजक तत्त्व बाहर निकल पड़ें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छींक एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक संरक्षक प्रतिवर्त है। छींक उन लोगों में एक समस्या हो जाती है जिनका नासा-आस्तर अति संवेदनशील है क्योंकि यह अत्यंत छोटे एवं नुकसान न पहुंचानेवाले उत्तेजकों के लिए भी फन्दा उत्पन्न कर देता है।

२. ग्रसनी

यह एक सामान्य पेशी नली है जो नाक और मुंह के पीछे रहती है। ग्रसनी किनारों की तरफ गलतुण्डिकाओं पर और शिखर पर कंठशालकों से सुरक्षित होती है। गलतुण्डिकाएं और कंठशालक श्वेत रक्त कोशाणुओं (लसीका ऊतक) का समूह हैं जो सेना रक्षकों की तरह काम करते हैं। ये ऐसे किन्हीं भी खतरनाक कीटाणुओं को मार भगाते हैं जो श्वास द्वारा अंदर गयी हवा को संदूषित कर सकते हैं। ये श्वेत रक्त कोशाणु वास्तव में जीवाणुओं को हजम कर जाने के लिए घेरे रहते हैं और फिर उस प्रक्रिया में स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं, पर ये तुरंत ही फिर से (नये माल की तरह) भर जाते हैं। यह प्रक्रिया एक तरफ तो इन कोशाणुओं को मारती है दूसरी तरफ शीघ्र ही उनकी पुनः पूर्ति कर देती है। ग्रसनी की पेशियां निगलने के कार्य में बहुत अधिक उपयोगी होती हैं। ग्रसनी सामने की तरफ कंठ (वाग् यंत्र) में खुलती है और पीछे की तरफ खाने की नली में।

३. कंठ

कंठ अपना आकार और खुलापन बनाये रखने के लिए उपास्थियों के टुकड़ों से बनाया जाता है। ऊपर उपास्थि का एक छोटा टुकड़ा जुड़ा होता है जिसे कंठच्छद कहते हैं। यह निगलने के समय गले को ढक्कन की तरह बंद कर देता है ताकि खाना इसके ऊपर से खाने की नली में सरक जाये और सांस की नली में न जाये।

स्वर-तंतु महीन पल्ले होते हैं जो कंठ की पार्श्व की दीवारों से प्रक्षेपित होते हैं। इन पल्लों का गति-संचलन मृदु कंठ पेशियों के अत्यंत कुशल समूहों के द्वारा नियंत्रित होता

है। कंठद्वार से हवा के गुज़रने पर इन तंतुओं में कम्पन होता है, जो आवाज़ को जन्म देता है और इस तरह यह वाग् का कारण है।

४. सांस की नली

दस सेंटीमीटर लंबी सांस की यह नली कंठ से आगे दायीं और बायीं श्वसनी में विभक्त होती है। श्वास के दौरान जो अनेक तरह की अंतः वक्षीय दबाव स्थितियां घटित होती हैं, उनमें अनवरोध या अरोक बनाये रखने के लिए दीवार में उपास्थियों के अधूरे छल्ले होते हैं। सांस की नली दायीं और बायीं श्वसनी में विभक्त हो जाती है जो सहसंबंधी फेफड़ों में चली जाती है।

५. श्वसनी

दायीं और बायीं श्वसनी सांस की नली की दो शाखाओं द्वारा बनती है। दायीं श्वसनी छोटी होती है और दायें फेफड़े की तीन पालियों में प्रवेश करने के लिए तीन शाखाओं में बंट जाती है। बायीं श्वसनी कुछ लंबी होती है और बायें फेफड़े की दो पालियों में प्रवेश करने के लिए दो शाखाओं में बंट जाती है। ये आगे फिर और छोटी श्वसनी में विभक्त होती हैं और अंत में श्वसनी शोथ के रूप में कूपिका नाम के हवा कोश में प्रवेश कर जाती हैं।

बड़ी श्वसनी में दीवार के अंदर उपास्थि के अधूरे छल्ले होते हैं। ये छल्ले छोटी श्वसनी में लुप्त हो जाते हैं। श्वसनी के भीतरी आस्तर (श्लेष्मल झिल्ली) में कोशिकाओं की रोमल सतही परत होती है जिसका संचलन ऊपर की तरफ होने से उन सूक्ष्म प्रदूषकों का निवारण करता है जो किसी तरह नाक में घुस आते हैं। भीतरी आस्तर में श्लेष्मल स्रावी कोशाणु भी होते हैं जिनसे पतला श्लेष्मल निकलता है जो गीला स्नेहक स्तर प्रदान करता है और हवा को भी नम होने में सहायता करता है। श्वसनी में सबसे महत्त्वपूर्ण होती है चिकनी पेशी की बारीक गोल परत, जो श्वसनी-वृक्ष के साथ पूरे मार्ग में साथ बनी रहती है। इस चिकनी पतली गोल श्वसनी पेशी की सिकुड़न हवा के मार्ग को संकरा कर देती है और इसका उन्मुक्त या शिथिल होना इस मार्ग को विस्तृत कर देता है। श्वसनी का व्यास कई तथ्यों के आधार पर घटता-बढ़ता है और एक अत्यंत जटिल तंत्री रासायनिक प्रक्रिया से नियंत्रित होता है।

फेफड़े

फेफड़े, जो संख्या में दो हैं, श्वसन क्रिया के प्रमुख अंग हैं। वे वक्ष के गह्वर को भरते हैं और दोनों बीच में हृदय से, इसकी रक्तवाहिकाओं से एवं अन्य संरचनाओं से दो तरफ विभक्त हैं। फेफड़े ऊपर शिखर सहित शंकु के आकार के होते हैं और इनका निचला भाग मध्य पट पर वक्ष गह्वर के तल पर स्थित होता है। फेफड़े दरारों द्वारा पालियों में बंटे होते हैं; दायें फेफड़े में तीन और बायें फेफड़े में दो पालियां होती हैं।

कूपिका या वायु कोश

वायु कोश पर सपाट कोशिकाओं की इकहरी परत का आस्तर होता है। यही वह स्थल है जहां रक्त हवा के लगभग प्रत्यक्ष संपर्क में आता है और केवल सपाट कोशिकाओं की दो परतवाली अत्यधिक महीन पारगम्य झिल्ली से अलग होता है। ऑक्सीजन हवा कोश में अंदर ली हुई श्वास से रक्त में विसरित होता है जो बहुत धीमी गति से कोशिकाओं में बह रहा होता है, और दो गैसों के आंशिक दबाव में भिन्नताओं के कारण कार्बन डाइऑक्साइड रक्त से वायुकोश में चला जाता है। कार्बन डाइऑक्साइड ऑक्सीजन की तुलना में अधिक सहजता और तत्परता से चलता है। फुप्फुस धमनी विऑक्सीजनित रुधिर को हृदय से ले जाती हैं और शिराएं ऑक्सीजनित रुधिर को हृदय में ले आती हैं।

श्वसित और प्रश्वसित वायु की रचनाओं को नीचे दिया गया है :

श्वसन धमनियों की फेफड़ों को पोषण आपूर्ति

श्वसित वायु		प्रश्वसित वायु
नाइट्रोजन	७९%	७९%
ऑक्सीजन	२०%	१६%
कार्बन-डाइऑक्साइड	०-०४%	४.४%
विविध	०-९६%	०-९६%

फुप्फुसावरण

हर एक फेफड़ा फुप्फुसावरण नाम की झिल्ली की दुहरी परत से घिरा हुआ है। फुप्फुसावरण का भीतरी आस्तर बड़ी समीपता से फेफड़े को घेरे रहता है और बाहरी आस्तर वक्ष की दीवारों के अन्दरूनी भाग को ढके रहता है। इस फुप्फुसावरण के बीच, स्नेहक तरल की एक परत होती है जो रगड़ या घर्षण को बचाती है।

शरीरक्रिया-संबंधी पक्ष

(श्वास का यंत्र विज्ञान)

श्वसन दो प्रक्रियाओं की अपेक्षा रखता है। एक **पूरक**, जो क्रियाशील है और दूसरी **रेचक** जो सामान्य स्थितियों के अंदर एक निश्चेष्ट परिघटना है।

वक्षीय पंजर के फैलाव से पूरक श्वसन क्रिया होती है और फेफड़े बड़े शांत और वश्य भाव से इस बढ़े हुए स्थान को भरने के लिए फैलते हैं जब वायु मार्गों से वायु को अंदर खींच लिया जाता है। इस पूरक क्रिया में पेशियों के तीन समूह जुड़े होते हैं :

१. **मध्य पट** : वक्ष के तल में यह पेशी की एक गुम्बदनुमा चादर होती है। मध्यपट की सिकुड़न वक्ष-गह्वर को नीचे की तरफ उदग्र या ऊपर सीधे विस्तृत करती है।

२. **अंतरापर्शुक पेशियां** : ये पसलियों के बीचो-बीच पेशियों की तिरछी पट्टियों की दो परते हैं। इस पेशी की सिकुड़न के कारण पसलियां उत्थित होकर वक्ष को आगे बाह्र की तरफ विस्तृत करती हैं।

३. **गरदन की पेशियां** : ये पेशियां नीचे जत्रुक (हंसली) से और ऊपर जबड़े की हड्डी से जुड़ी होती हैं। कंधे की मेखला पेशियों के साथ इन पेशियों की सिकुड़न उरोस्थि और जत्रुक को खींचने में मदद करती है ताकि वक्ष ऊपर की तरफ फैल सके। ये पेशियां केवल गहरी बलपूर्वक ली गयी श्वास में प्रयुक्त होती हैं।

पेट की पेशियां भी बलपूर्वक ली गयी श्वसन क्रिया में सहयोग देती हैं।

प्रश्वसन तब घटित होता है जब अंतःवक्षीय आयतन के घटने पर हवा फेफड़ों से वायुमार्गों के द्वारा ज़ोर से बाहर आती है और वक्ष की दीवार इन पेशियों की विश्रांति या प्रशमन अवस्था के समय पीछे चली जाती है।

श्वसन नियंत्रण :

श्वसन की सामान्य दर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कुछ अधिक होती है। प्रति मिनट सामान्य दर इस प्रकार है :

(१) नवजात शिशुओं में	४० प्रति मिनट
(२) एक वर्ष के शिशु में	३० प्रति मिनट
(३) दो से पांच वर्ष तक के बालक में	२४ प्रति मिनट
(४) बड़ों में	१०-२० प्रति मिनट

श्वसन की गहराई और दर शरीर की ऑक्सीजन मांग के अनुसार अलग होती है। यह व्यायाम और भावावेग के समय बढ़ती है और आराम के समय घटती है।

श्वसन दो मुख्य कारणों से नियमित और नियंत्रित होता है।

(अ) **तंत्रिका नियंत्रण** : श्वसन केन्द्र तंत्रि कोशिकाओं का एक समूह है जो दिमागी तने के निचले भाग मेडुला आब्लांगेटा में स्थित है। यह श्वसन की मूल प्रतिवर्त लय को तंत्रियों के बीच बनाये रखता है जो रीढ़रज्जु के नीचे एवं ऊपर श्वसन की पेशियों की तरफ जाती हैं।

(ब) **रासायनिक नियंत्रण** : श्वसन केन्द्र रक्त में कुछ विशेष रासायनिक परिवर्तनों द्वारा प्रभावित हो सकता है। रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड की अधिकता (रक्त में अम्ल की अधिकता) और ऑक्सीजन की कमी श्वास की दर और गहनता को बढ़ाने के लिए श्वसन केन्द्र को उद्दीप्त कर देती है। रक्त में ऑक्सीजन की अधिकता और कार्बन-डाइऑक्साइड की कमी होने पर विपरीत परिणाम होता है।

मेडुला में श्वसन के लिए इस निचले केन्द्र के लयात्मक स्रावों का नियंत्रण उच्चतर केन्द्रों से उत्पन्न प्रभावों के अधीन होता है। हाइपोथेलेमस जो स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का स्थान है, उसके द्वारा इस तरह के एक उच्चतर नियंत्रण का प्रयोग किया जाता है। तंत्रिका संयोजन इन दो केन्द्रों के बीच स्थित होते हैं। हाइपोथेलेमस से उत्तेजक आवेग किन्हीं भी भावात्मक तरंगों के साथ सांस में चले जाते हैं जिनसे सांस की दर बढ़ जाती है और वह उथली हो जाती है।

तंत्रि संयोजन का एक दूसरा समूह सामने के वल्कुट और मेडुला-केन्द्र के बीच होता है जिसके कारण श्वसन को आसानी से स्वेच्छापूर्वक बदला जा सकता है। यह तंत्रि नियंत्रण का सर्वोच्च स्तर है।

इस तरह हम पाते हैं कि तंत्रिका नियंत्रण तंत्रों में एक श्रेणीबद्ध तारतम्यता है जो विश्राम कर रही मूल अनैच्छिक लय को विघ्न या बाधा पहुंचाये बिना सामंजस्य से काम करती है। उच्चतर नियंत्रण श्वास की गहनता और दर में परिवर्तन लाने के लिए हमें मदद करते हैं ताकि शरीर में ऑक्सीजन की मांग को पूरा किया जा सके।

त्रुटिपूर्ण सोच-विचार और आदतों के कारण हमारी श्वास बाधित और अव्यवस्थित हो जाती है। इससे श्वसन पथ के दरम्यान वायु के मुक्त प्रवाह में कमी आ जाती है, यहांतक कि यह श्वास के नियंत्रण करनेवाले श्वसन केन्द्रों को भी प्रभावित कर देता है। इसलिए शरीर में चल रहे विघ्नों और व्यवधानों के प्रति सचेत होना, शुद्धिकरण द्वारा उनपर कार्य करना और उनपर अधिकार प्राप्त करना यौगिक अभ्यास का आवश्यक अंग है।

शुद्धिकरण योग में पहला कदम है। प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए किये जानेवाले शुद्धिकरण के इन अभ्यासों को 'क्रियाएं' कहते हैं।

क्रियाएं

हमारे शरीर में विभिन्न निकाय हैं—अर्थात् अंग। हर निकाय का एक अलग अनुशासन और अलग कार्य-प्रणाली होती है। क्रियाएं इन सभी अंगों को स्वच्छ और शुद्ध करती हैं और इस तरह सबके लिए अलग-अलग होती हैं। क्योंकि क्रियाएं स्वच्छ करनेवाली प्रणालियों के नाम हैं, इसलिए, इस अर्थ में, हम सभी क्रियाओं का अभ्यास करते हैं। स्नान करना, मुंह धोना, दंत-मंजन करना, ये सभी क्रियाएं हैं। लेकिन यौगिक क्रियाएं योग की उन विशेष प्रणालियों का नाम है, जो अंदर के अंगों को स्वच्छ करने के लिए प्रयुक्त होती हैं और जिन्हें महान् योगाचार्यों ने विकसित किया है। योगविद्या में उपलब्ध क्रियाओं में छह प्रमुख क्रियाएं हैं जिन्हें **षट् क्रिया** कहते हैं। ये हमारे शरीर के प्रायः सभी अंगों पर कार्य करती हैं।

ये इस प्रकार हैं—

धौति : आमाशयी आन्त्र पथ के लिए है। यह क्रिया अन्तर धौति कहलाती है। इसके अलावा दंत धौति और हृद् धौति भी हैं।

बस्ति : नीचे के आमाशयी आन्त्र पथ तथा मुख्यतः मलद्वार की स्वच्छता के लिए है। शंख प्रक्षालन पूरे आमाशयी आन्त्र पथ को स्वच्छ करता है।

नेति : सूत्र, जल, दुग्ध, घृत भेद से नेति चार प्रकार की है। यह नासिका के ऊपरी मार्ग को तथा गले तक सब स्वच्छ करती है।

त्राटक : किसी भी लक्ष्य को निश्चल दृष्टि से देखना। बहिरंग त्राटक दृष्टि के लिए और अन्तरंग त्राटक चित्त की एकाग्रता के लिए श्रेष्ठ है।

नौलि : उदरीय पेशियों और अंतड़ियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद। मन्दाग्नि दूर करनेवाली और पाचनक्रिया को बढ़ानेवाली है। यह अत्यंत श्रेष्ठ हठक्रिया मानी जाती है।

कपालभाति : नीचे के श्वसन पथ के लिए। नासा छिद्रों से फेफड़ों तक शुद्धि करती है।

योग-क्रियाओं का कार्य है :

१. अन्दर के मार्गों को स्वच्छ करना, जैसे दृष्टि पथ को, श्वसन पथ को और आमाशयी आन्त्र पथ को। इससे अंदर के सब मार्गों को नयी शक्ति मिलती है और सुस्ती एवं शिथिलता दूर हो जाती है।

२. आन्तरिक अभिज्ञा का विकास करना।

३. मार्गों में संभावित अति संवेदनशील प्रतिक्रियाओं (जैसे कि नासा प्रत्यूर्जता या एलर्जी) को असंवेदी बनाना।

४. सहनशीलता की सामर्थ्य को बढ़ाना और प्रतिरोधक शक्ति के रूप में दम (स्टेमिना) का निर्माण करना।

क्रियाओं का नियम अथवा सारतत्त्व है :

१. या तो बाह्य माध्यम से या संकल्प के नियंत्रण से तंत्र को प्रेरित और उद्दीप्त करना

और

२. क्रियाओं के बाद या अभ्यास के दौरान भी खूब गहराई के साथ विश्रान्ति लेना।

इन षट् क्रियाओं में **कपालभाति** श्वसन-तंत्र से सम्बन्धित होने के कारण हम उसका विशेष उल्लेख कर रहे हैं।

योग में **कपाल. भाति** की अलग-अलग प्रणालियों का विकास हुआ है। इनमें से हमने प्रथम अभ्यास के रूप में **एकान्तर नासा कपालभाति** को चुना है जो दोनों नासाछिद्रों द्वारा बारी-बारी से की जाती है और श्वसन तंत्र के विशेष रूप से निचले पथ को स्वच्छ करती है।

शुद्धिकरण : कपालभाति

'हठयोग प्रदीपिका' में शुद्धिकरण की इस विशेष क्रिया-प्रणाली को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ।।२/३५।।

अर्थात् श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया को लुहार की धौंकनी की तरह तेज़ी से करना चाहिए। कफ सम्बन्धी समस्त दोषों का निवारण करनेवाली इस क्रिया को '**कपाल भाति**' कहते हैं।

सामान्य श्वसन में श्वास लेने की क्रिया 'एक्टिव' या सक्रिय होती है और श्वास छोड़ने की क्रिया 'पैसिव' निष्क्रिय होती है। पर कपालभाति में यह प्रक्रिया विपरीत हो जाती है—प्रश्वास सक्रिय हो जाता है और श्वास निष्क्रिय होता है।

सामान्य अर्थ में **कपालभाति** मस्तिष्क को स्वच्छ और प्रकाशित करती है—इस क्रिया से सामने का मस्तिष्क अथवा माथा स्वच्छ होता है : **कपालं भाति इति कपालभाति**।

कफ अर्थात् श्लेष्मा की जितनी भी बाधाएं श्वसन-पथ को दूषित करती हैं, यह क्रिया उन्हें स्वच्छ करती है। इस क्रिया से मस्तिष्क की कोशिकाओं को उद्दीपन मिलता है।

कपालभाति

कपालभाति में प्रश्वसन के लगातार तेज़ आघात होते हैं, और स्वाभाविक निष्क्रिय श्वसन उनका अनुसरण करता है।
एक चक्र (१२० आघात) एक मिनट में

कपालभाति

सामान्य श्वास

लगभग ४.० सेकंड

कपाल भाति

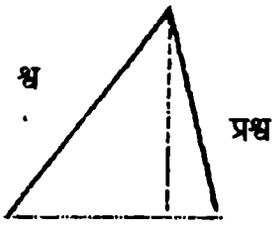

लगभग ०.४ सेकंड और ०.१ सेकंड

श्व = श्वसन
प्रश्व = प्रश्वसन

बहुत तेज़—१२० प्रति मिनट
प्रश्वसन बलपूर्वक
श्वसन अनैच्छिक

स्थिति

स्थिति

पद्मासन या वज्रासन में बैठें, मेरुदण्ड सीधा रहे और चेहरा तनावमुक्त एवं प्रसन्न हो।

दायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा उंगलियों को अंदर मोड़कर नासिका मुद्रा का प्रयोग करें। अंगूठा, अनामिका और छोटी उंगली खुली रखें।

दायां नासा छिद्र दायें अंगूठे से धीरे से दबायें और अनामिका एवं छोटी उंगली को बायें नासाछिद्र से छुआकर रखें।

अभ्यास के दौरान अपने नासाछिद्रों पर न तो अधिक दबाव डालें, न तो उन्हें उमेठें।

कुहनियों को पेट पर आराम से टिकाये रहें। उन्हें ऊपर की तरफ न उठायें। इससे व्यर्थ ही बांह को आयास होगा।

चेहरे को तनावमुक्त और प्रसन्न रखें। आंखें बंद रहें। इससे उदरीय पेशियों के संचलन पर ध्यान एकाग्र करने में मदद मिलती है और आंतरिक अभिज्ञा बढ़ती है, जिससे **कपालभाति** के कारण पूरे शरीर में होनेवाले परिवर्तनों को अनुभव किया जा सकता है।

*नोट : **कपालभाति** क्रिया के समय पेट खाली होना चाहिए या बहुत हल्का।*

नासिका मुद्रा

प्रणाली

- बायें नासाछिद्र से पूरी सांस लें और उदरीय पेशियों को बाहर की तरफ उभरने दें।
- उदरीय पेशियों को अन्दर की तरफ खींचते हुए बायें नासाछिद्र से वायु को प्रस्फोट के साथ अधिक से अधिक तेज़ी से बाहर की तरफ फेंकें।
  चेहरे पर सिकुड़न न डालें, नासाछिद्र को मरोड़ें नहीं। चेहरे पर प्रसन्न भाव बनाये रखें।
- मृदुता से बायें नासाछिद्र को दबायें और दायें हाथ के अंगूठे के दबाव को हटाते हुए दायें नासाछिद्र को खोलें।
  सांस लेने की क्रिया को होने दें, जिससे स्वभावतया ही उदरीय पेशियां विस्तृत होंगी। श्वसन पूरा करें।
- प्रस्फोट के साथ सांस छोड़ें, जिससे दायें नासाछिद्र से हवा तेज़ी से बाहर जाये, उदरीय पेशियों को पूरी तरह अन्दर की तरफ खींच लें। प्रश्वसन पूरा करें।

उपर्युक्त क्रिया **एकान्तर नासाछिद्र कपालभाति** का एक चक्र पूरी करती है।
इस चक्र को ६० बार दोहरायें।

गति

आरंभ में, पूरे श्वास और प्रश्वास पर एकाग्र हों। प्रश्वास के तेज़ आघातों और उदर की पेशियों की क्रियाशीलता पर ध्यान केन्द्रित करें। गति धीमी या इतनी धीमी हो सकती है कि प्रति मिनट १० से १५ चक्र पूरे हो सकें।

जैसे जैसे प्रगति होगी, आप गति को एक मिनट में १२० आघातों या एक मिनट में ६० चक्रों तक बढ़ा सकेंगे।

प्रश्वसन के लिए लिया गया समय अभ्यास से धीरे-धीरे कम होता चला जायेगा।

निर्देश

इस क्रिया के निष्पादन में कुछ अन्य गौण प्रभावों का आगमन हो सकता है। ऐसी किसी संभावना को बचाने के लिए पूर्वोपायों के रूप में निम्नलिखित बातों का पालन करना आवश्यक है।

१. कपालभाति क्रिया करते समय मेरुदंड को आगे की तरफ, पीछे या बगल की तरफ न झुकायें। इस तरह का मुड़ना-झुकना या ऐसी कोई भी असममिति या विषमता गरदन या पीठ में पेशियों की जकड़न या मोच का कारण हो सकती है, यहांतक कि बिम्ब विसर्पण (स्लिप डिस्क) तक जा सकती है।

२. अभ्यास के दौरान चेहरे की ऐंठन चेहरे की पेशियों में जकड़न पैदा कर सकती है। इसलिए चेहरे पर किसी प्रकार का तनाव न हो।

३. पेट भरा होने पर या आधा भरा होने पर **कपालभाति** न करें। अगर इस सावधानी का पालन न किया गया तो पाचन-सम्बन्धी गड़बड़ें पैदा हो सकती हैं।

प्रतिनिर्देश

- उच्च रक्तचाप, स्थानिक अरक्तता हृदय रोग (किसी हिस्से में रक्त की कमी के कारण हृदय रोग) बिम्ब विसर्पण, स्पान्डिलसिस आदि रोगों से ग्रस्त लोगों को विशेष रूप से आरंभ में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- मासिक स्राव के दौरान एवं गर्भावस्था में स्त्रियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ

१. शरीरक्रियात्मक प्रभाव :

कपालभाति एक श्रेष्ठ क्रिया है जो पूरे शरीर में हर तरह की क्रियाशीलता का उद्दीपन करती है। शरीर के विभिन्न भागों या तंत्रों पर इसका प्रभाव इस प्रकार है :

पेशी तंत्र

विशेष रूप से उदरीय पेशियों की कसरत बहुत ज़ोर से होती है, जिससे उदरीय अंगों का मर्दन (मालिश) होता है और उनमें लचीलापन आता है।

श्वसन तंत्र

श्वास-दर प्रति मिनट १५ के बदले १२० बार प्रति मिनट होती है, जिसके कारण ये दो मुख्य प्रभाव सामने आते हैं :

१. फेफड़ों से कार्बन-डाइआक्साॅइड बाहर निकल जाता है और

२. फेफड़ों में ऑक्सीजन की वृद्धि से ऑक्सीजन का संकेन्द्रण या सान्द्रण (गाढ़ापन) हो जाता है।

सामान्य श्वसन के दौरान प्रश्वसन के अंत में बासी हवा पूरी तरह बाहर नहीं निकलती

है। फेफड़ों का अवशिष्ट आयतन ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत के लगभग होता है। **कपालभाति** में प्रश्वसन के लगातार तेज़ आघातों के कारण इस अवशिष्ट हवा से मुक्ति मिल जाती है और फेफड़े पूरी तरह स्वच्छ हो जाते हैं।

परिसंचरण तंत्र

हृदय की बढ़ी हुई स्पंदन-दर सारे तंत्र में बड़ी तेज़ी के साथ रक्त संचार करती है। रक्त ऑक्सीजन के उच्चतर संकेन्द्रण से परिपूर्ण हो जाता है और सारी कोशिकाओं को अधिक सक्रिय स्तर पर उद्दीप्त कर देता है। एक स्थान पर जमे रहने की आदत के कारण कोशिकाओं की सुस्ती और निर्जीवता समाप्त हो जाती है।

ग्रंथि तंत्र

अंतःस्रावी और बहिःस्रावी दोनों तंत्रों को उद्दीपन मिलता है और वे संगतिपूर्ण एवं समस्वर हो जाते हैं। अंग स्वस्थ होकर सामान्य और सहज होने लगते हैं।

पाचन तंत्र

पाचन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष सुधार नज़र आता है क्योंकि पेट की पेशियां इस क्रिया के साथ सीधी जुड़ी होती हैं।

तंत्रिका तंत्र और मस्तिष्क

इस प्रक्रिया के दौरान अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र उद्दीप्त हो जाता है। इस अभ्यास से अनुकम्पी-परानुकम्पी संतुलन ठीक बना रहता है।

कपालभाति करते समय मस्तिष्क की कोशिकाएं लगातार अनुप्राणित होती हैं। रक्त का बढ़ा हुआ परिसंचरण ऑक्सीजन के संकेन्द्रित उच्च स्तर के साथ मस्तिष्क की कोशिकाओं को स्वच्छ करता है और उनके कार्य को पुनरुज्जीवन प्रदान करता है। मस्तिष्क में स्मृति कोशिकाएं और दूसरी अनेक कोशिकाएं सक्रिय होकर कार्य करने लगती हैं। (मस्तिष्क पर हुए आविष्कारों से यह पता लगा है कि आइन्स्टीन और न्यूटन जैसी प्रतिभाओं ने अपने मस्तिष्क की केवल ५ प्रतिशत क्षमता का प्रयोग किया है।)

२. चिकित्सासम्बन्धी लाभ

मधुमेह, मोटापा, श्वास की गड़बड़ें, पाचन सम्बन्धी समस्याएं (कब्ज़, जठरशोथ, अति अम्लता आदि) —इन रोगों से ग्रस्त लोगों ने **कपालभाति** से बहुत अधिक लाभ प्राप्त किया है।

३. समग्र प्रभाव

(अ) शरीर के विभिन्न निकायों या तंत्रों को स्वच्छ करना, सक्रिय करना और उन्हें प्राणवन्त करना।

(ब) तमस् से रजस् की ओर ले जाना।

कपालभाति के अन्य प्रकार

इस क्रिया के मूल ढांचे को ज्यों का त्यों रखते हुए (अर्थात् एक मिनट में १२० बार सांस को आघातों के साथ बाहर फेंकना और ली जानेवाली सांस द्वारा स्वाभाविक 'पैसिव' अनुगमन करना) **कपालभाति** के और भी कुछ प्रकार हैं :

कपालभाति (१)

इसमें प्रश्वास के आघातों के लिए दोनों नासाछिद्रों का एक साथ उपयोग किया जा सकता है और श्वास अन्दर लेने की क्रिया सहज स्वाभाविक रहती है। यह मूलभूत एक प्रणाली है, शेष दूसरी प्रणालियां इसी मूल प्रणाली का संयोजन और क्रम-परिवर्तन हैं। इसमें (नासिका मुद्रा के रूप में) हाथ का उपयोग नहीं होता।

लाभ : यह दोनों नासाछिद्रों को एक साथ स्वच्छ करती है।

एक नासाछिद्र की कपालभाति (२)

(अ) **चन्द्रानुलोम विलोम कपालभाति**

- नासिका मुद्रा में दायें हाथ के अंगूठे से दायां नासाछिद्र बंद करें।
- बायें नासाछिद्र से सांस लें।
- बायें नासाछिद्र से ही सांस ज़ोर से बाहर फेंकें।
- सहज स्वाभाविक निष्क्रिय श्वास-क्रिया। केवल बायें नासाछिद्र से प्रति मिनट १२० बार बिना रुके आघात के साथ सांस बाहर फेंकना और निष्क्रिय निरायास श्वास लेना।

विशेष लाभ : शरीर तंत्र को शीतल रखती है और शरीर में उपचय की प्रक्रिया को उद्दीप्त करती है।

(ब) सूर्यानुलोम विलोम कपालभाति

- नासिका मुद्रा में अनामिका और कनिष्ठिका उंगली से बायें नासा छिद्र को बंद करें।
- दायें नासा छिद्र से श्वास लें।
- दायें नासा छिद्र से ही ज़ोर से सांस बाहर फेंकें।
- स्वाभाविक निष्क्रिय-श्वसन।

केवल दायें नासाछिद्र द्वारा ही दोहरायें और गति को क्रमशः प्रति मिनट १२० आघात तक ले जायें।

लाभ

यह क्रिया शरीर-तंत्र में ऊष्मा बढ़ाती है, अपचय की प्रक्रिया में सहायता करती है।

सूर्य और चन्द्रभेदन कपालभाति (३)

(अ) चन्द्रभेदन कपालभाति

- नासिका मुद्रा द्वारा दायें नासाछिद्र को बंद करें।
- बायें नासाछिद्र से पूरा श्वास लें।
- बायें नासाछिद्र को बंद करें और दायां नासाछिद्र खोलें।
- दायें नासाछिद्र से श्वास जोर से बाहर फेंकें।
- दायां नासाछिद्र बंद और बायां खोलकर बायें नासाछिद्र से स्वाभाविक श्वास लें।
- दोहरायें। प्रति मिनट १२० आघात तक। श्वास का दक्षिणावर्त संचरण।

(ब) सूर्यभेदन कपालभाति

चन्द्रभेदन कपालभाति की पूरी प्रक्रिया का विपर्यय। श्वास का प्रतिदक्षिणावर्त संचरण।

लाभ

ये क्रियाएं प्राणमय कोश में चन्द्र और सूर्य नाड़ियों को सक्रिय एवं गतिशील करती हैं तथा दोनों नासाछिद्र भली-भांति स्वच्छ हो जाते हैं।

श्वास की क्षिप्रता, सामान्य गति और मन्थरता

प्राण के असन्तुलन के कारण श्वास में उथलापन आ जाता है, लय नहीं रहती और सांस तेज़, बेतरतीब एवं अव्यवस्थित हो जाती है। ठीक ढंग से सांस न लेना हमारे अभ्यास में आ जाता है और इस त्रुटिपूर्ण आदत के कारण आगे जाकर सांस में अवरोध पैदा हो जाते हैं, हल्के झटके लगते हैं, सांस फूलने लगती है और दोनों नासाछिद्रों के बीच श्वास का सन्तुलन समाप्त हो जाता है। इस दिशा में पहला कदम होगा कि सामान्य यौगिक क्रियाओं और विशेष रूप से **नेति** और **कपालभाति** के द्वारा श्वसन-पथ और फेफड़ों को स्वच्छ कर लिया जाये। इस विषय में हम आपको पिछले अध्याय में बता चुके हैं। दूसरा कदम है श्वास को सामान्य करना। यह काम श्वास के असंतुलन से उत्पन्न होनेवाले प्रभावों को धीरे-धीरे कम करके और गलत ढंग से सांस लेने की आदतों को सुधार कर हो सकेगा। इससे सम्बन्धित प्रणालियों को **अनुभागीय श्वसन** शीर्षक के अंदर रखा गया है। यह श्वसन अभ्यास का एक प्रारम्भिक या उपक्रमात्मक नमूना है जो फेफड़ों की प्राणशक्ति को बढ़ाता है।

इसे हमने **अधम श्वास, मध्यम** और **आद्यश्वास** इन तीन भागों में रखा है।

(अ) अधम श्वास—इसे उदरीय या **मध्यपटीय श्वास** भी कहते हैं।

अधम श्वास

प्रणाली

वज्रासन में सीधे बैठ जाइये। सांस छोड़िये। अब पूरी सांस लीजिये—धीमी गति और अनवरतता के साथ। इसे **पूरक** कहते हैं। अन्दर, विशेषतया फेफड़ों के निचले भागों में प्रवेश कर रही हवा से पेट लगातार बाहर की तरफ उभरता-फूलता चला जाये। श्वास छोड़ने से पहले बिना किसी ज़ोर या दबाव के कुछ क्षणों के लिए श्वास रोकिये (**आन्तर्य कुम्भक**)। जब सांस छोड़ें (**रेचक**) पेट अनवरत और धीमी गति से अंदर की तरफ खिंचता चला जाये। पुनः सांस लेने से पहले सांस को बिना किसी आयास के कुछ पलों के लिए रोकिये (**बाह्य कुम्भक**) और तब सांस लीजिये। इस प्रकार एक श्वसन-चक्र पूरा होता है। इसे दोहराइये। इस पूरी प्रक्रिया में कोई झटका या प्रतिक्षेप नहीं लगना चाहिए। प्रक्रिया निर्बाध-शान्त, अनवरत और विश्रान्तिप्रद होनी चाहिए।

श्वसन के दौरान मध्यपट का भाग पेट के उभार के साथ पेट को छाती से अलग करके नीचे आता है। इससे फेफड़ों के निचले भागों में हवा का प्रवाह बढ़ता है। मध्यपट में होनेवाली सांस की लयात्मक गति बड़ी मृदुता से पेट के अंगों की मालिश करती है और उन्हें सामान्य रूप से कार्य करने में मदद करती है। यह रक्त-संचार को भी सामान्य करती है।

मध्यम श्वास

(ब) मध्यम श्वास—इसे वक्षीय या अंतरापर्शुक श्वास या श्वसन भी कहते हैं।

प्रणाली

इस अनुभागीय श्वसन अभ्यास के लिए वज्रासन में सीधे बैठ जाइये। इसमें श्वास-प्रश्वास को केवल वक्षीय संकुचन और विस्तार के साथ किया जाता है—सांस लेते समय वक्ष को फुलाना-फैलाना और सांस छोड़ते समय वक्ष को सिकोड़ना या दबाना। दोनों नासा-छिद्रों में श्वास का प्रवाह धीमा और अबाध (अनवरत) रहना चाहिए। इसमें पेट

के फुलाव का परिहार किया जाता है जिससे पेट पर नियंत्रण होता है। इस तरह की श्वसन-क्रिया से मध्य पिण्डिकाएं या बीच का हिस्सा पूरी तरह खुल जाता है।

आद्य श्वास

(स) आद्य श्वास—इसे **जत्रुक श्वास** या **पिण्डक श्वास** भी कहते हैं। **जत्रुक** का अर्थ है हंसली अथवा गले की हड्डियां। सांस लेते समय जत्रुक की हड्डियों को ऊपर उठाइये और कंधों को धीरे से पीछे की तरफ ले जाइये। पेट की पेशियों को संकुचित रखिये। हवा फेफड़ों के ऊपरी भागों में भर जाती है और इस तरह ऊपर के पाली भाग में भरपूर वायु-संचार हो जाता है। सांस छोड़ते समय जत्रुक हड्डियों को नीचे ले आइये और कंधों को भी सामान्य स्थिति में आगे ले आइये।

फेफड़ों के ऊपर के पालीभागों का उपयोग बहुत ही कम होता है—इस श्वसन-अभ्यास से ये हिस्से अच्छी तरह वायु-पूरित हो जाते हैं।

ये ही **अनुभागीय श्वसन-क्रिया** के अधम, मध्यम और आद्य श्वास कहलाते हैं।

(ह) पूर्ण श्वास—इसे यौगिक श्वास कहते हैं।

इस पूर्ण यौगिक श्वसन-प्रणाली में ऊपर के तीनों श्वसन-प्रकार सम्मिलित हैं। श्वास लेते समय क्रमशः अधम, मध्यम, आद्य श्वास अर्थात् उदरीय, वक्षीय और जत्रुक श्वास ली जाती है। श्वास छोड़ते समय भी यही क्रम रहता है। क्रमशः उदर, वक्ष और जत्रुक भागों से वायु को बाहर निकाला जाता है। पूरी प्रक्रिया चेहरे पर बिना किसी दबाव या तनाव के आरामदेह ढंग से विश्रान्ति के साथ होनी चाहिए।

पूर्ण श्वास

श्वास को स्वच्छ और सामान्य करने की प्रक्रिया का अभ्यास हो जाने के बाद खास प्राणायाम को समुचित रूप से आरंभ करने की तैयारी हो जाती है। प्राणायाम में श्वसन क्रिया के मुख्य लक्षणों में सबसे प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है श्वास की मन्थरता। नीचे का चित्र श्वसन के तीनों क्षेत्रों—क्रिया, अनुभागीय श्वसन और प्राणायाम को गति या रफ्तार की दृष्टि से अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है।

श्वास की गति

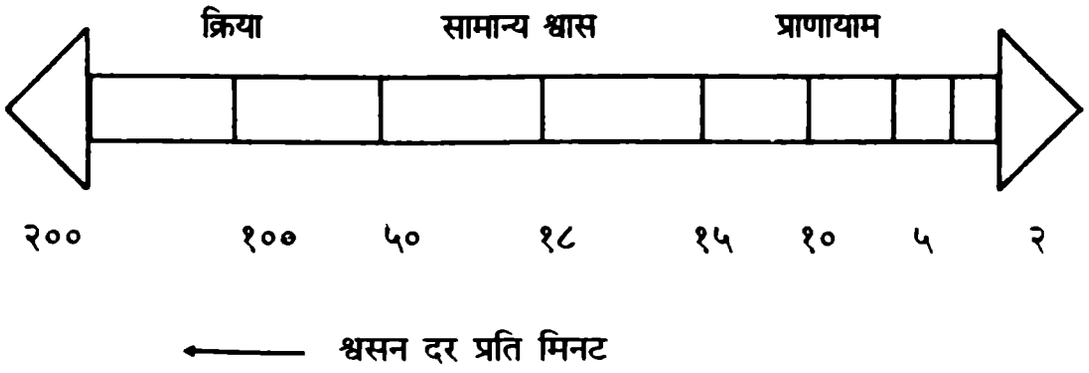

जैसे-जैसे हम क्रियाओं के तेज़ रफ्तार वाले क्षेत्र से सामान्य श्वसन के क्षेत्र और प्राणायाम के क्षेत्र की तरफ आते हैं, श्वसन दर (हर मिनट ली जानेवाली सांस की संख्या) कम होती चली जाती है।

अनेक अभ्यास करनेवाले और इस विद्या के सिद्धान्ती लोगों में बड़ी भारी भ्रांत धारणा यह रही है कि प्राणायाम से रक्त में ऑक्सीजन का स्तर बढ़ता है और प्राणायाम ऑक्सीजन के अधिक केन्द्रीकरण के द्वारा श्वसन-तंत्र को बलवान बनाता है। इस विषय में बहुतों का तर्क यह है कि प्राणायाम में गहन श्वास-प्रश्वास होने के कारण ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है। ऐसे लोग यहां तक स्वीकार करते हैं कि प्राणायाम में प्रगति करने के साथ-साथ ऑक्सीजन की मात्रा घटाने पर भी ध्यान देना चाहिए।

यह तो सुविदित ही है कि कोशिका के परिवेश से या आसपास से यदि कार्बन डायोक्साइड हटा दिया जाये या कम कर दिया जाये तो कोशिका की निष्क्रियता घटती है और वह शक्ति के साथ काम करने लगती है। पहले के अध्याय में हम देख ही चुके हैं कि क्रियाओं के द्वारा कोशिकाओं को सक्रिय करने का और उन्हें शक्तिशाली बनाने का कार्य होता है। पर जहां तक श्वसन क्रियाविज्ञान का सम्बन्ध है, प्राणायाम का प्रभाव बिल्कुल भिन्न और दूसरा होता है। प्राणायाम के दौरान रक्त में कार्बन डायोक्साइड का केन्द्रीकरण बढ़ता है। प्रश्न है क्या यह संकटपूर्ण नहीं है ? क्या इससे कोशिकाएं सुस्त और निष्क्रिय होना आरंभ नहीं कर देंगी ? फिर श्वास की मन्थरता से क्या लाभ है ?

क्योंकि प्राणायाम के द्वारा तंत्र को अत्यंत विधिपूर्वक श्वास की मन्थर गति के लिए धीरे-धीरे प्रशिक्षित किया जाता है, इसलिए इसमें खतरे की कोई गुंजाइश नहीं है। हठ या बल से नहीं बल्कि धीमी गति से स्थिरता रखकर प्राणायाम किया जाना चाहिए। योग में न हठात् न बलात् निषेधाज्ञा है जो सारे संकटों का परिहार करती है और मन्द एवं स्थिर यह आदेश है।

जिन कोशिकाओं को अभ्यास से प्रशिक्षित नहीं किया गया है, वे आसपास कार्बन डायोक्साइड बढ़ने से अवश्य ही सुस्त और निष्क्रिय हो जाती हैं। पर जब मस्तिष्क के श्वसन-केन्द्र में पहुंचनेवाले श्वसन-आवेगों को चेतन होकर संभाला जाता है और ठीक से संचालित किया जाता है, तब कोशिकाएं प्रशिक्षित हो जाती हैं और इस तरह वे कम कार्बन डायोक्साइड के साथ अधिक प्रभावशाली रूप से काम करने की अभ्यस्त हो जाती हैं। इसे ही कोशिकाओं की क्षमता-वृद्धि कहा जाता है। प्राणायाम के द्वारा कोशिकाओं की निष्क्रिय पड़ी अन्तःक्षमता प्रकट होना आरंभ कर देती है।

मूलभूत शारीरिक क्रियाओं का निर्वाह करने से जो शक्ति या ऊर्जा खर्च होती है, उस दर को उपापपाचन-दर कहा जाता है। श्वसन-दर उपापपाचन-दर के लगभग अनुरूप ही होती है। यह भी सुविदित है कि पांच घंटे की अच्छी नींद से लगभग ९ प्रतिशत उपापपाचन-दर कम हो जाती है। ऐसा भी लक्ष्य किया गया है कि अच्छी नींद से श्वसन-दर भी कम हो जाती है। उपापपाचन-दर में न्यूनीकरण की मात्रा से अन्य तंत्रों की दर को मापा जा सकता है। इसलिए यह निष्कर्ष सहज स्वाभाविक है कि श्वसन-दर की मन्थरता से शरीर-मन को बहुत गहरा विश्राम मिलता है।

इस विद्या या विज्ञान का सबसे अधिक महत्त्व है। इसे हम प्राणायाम के सबसे अधिक सन्निकट पाते हैं। प्राणायाम के द्वारा हम तनावमुक्त रहकर कार्य करना सीखते हैं। किसी भी प्रकार की अतिशयता, अति संवेदनशीलता, बहुत अधिक प्रतिक्रिया के बिना कार्य करना सीखते हैं। हम कम ऊर्जा के खर्च से अपना काम पूरा करते हैं। कम पेट्रोल अधिक दूरी। मोटरकार आदि परिवाहनों में यह कैसे संभव है? रगड़ या घर्षण के नुकसानों को कम करके। ईंधन का अधिक कुशलता से उपयोग करके।

रॉयल एनफील्ड बुलेट मोटर साइकिल एक लीटर पेट्रोल पर करीब १६-२० किलो मीटर देती थी। १९८५-८६ के बीच एक तरफ पेट्रोल की कीमत बढ़ी, दूसरी तरफ तमाम नयी, हल्की, कम परेशान तलब मोटर साइकिलों से बाज़ार भर गया। स्वाभाविक ही रॉयल एनफील्ड का बाज़ार बहुत तेज़ी से नीचे गिर गया। यहां तक कि अमीर नौजवान, जो एनफील्ड को उसकी शानदार सवारी के लिए खरीदा करते थे, कहने लगे, क्यों नहीं हीरो हांडा या यमह, जिनकी साज सजावट उतनी ही आलीशान और सुंदर है! तुरंत ही रॉयल एनफील्ड की शोध शाखा के लोगों ने एक उत्तेजना भरे सत्र में अपने काबूरेटर जेट आदि के द्वारा एक लीटर पेट्रोल में ३०-३५ कि० मी० दूरी तय करने का ताबड़तोड़ प्रबन्ध किया। इसे ही हम कार्यक्षमता कहेंगे। कम निवेश या लागत, अधिक निर्गत या उत्पादन।

और यही वह चीज़ है जो प्राणायाम हमारे लिए करता है। यह क्षमता को बढ़ाता है। इस तरह ऊर्जा का संरक्षण हो जाता है।

एक सामान्य वयस्क व्यक्ति खाने में करीब ३००० कैलॉरी (ऊष्माकं) लेता है। यदि वयस्क व्यक्ति में तेज़ी या हड़बड़ी है, संवेदनशीलता है और वह चाहे जब प्रतिक्रिया का रुख अपनाता है, तब रोज़ के सामान्य कार्यों में ही उसकी लगभग १५००-२००० तक कैलॉरी खर्च हो जाती है। और कुछ करने के लिए जो शक्ति उसे चाहिए, उतनी शक्ति उसमें नहीं रहती। जब कि प्राणायाम करने से सामान्य मूल आवश्यकताओं के निर्वाह के लिए केवल ५००-१००० कैलॉरी की ज़रूरत होती है। शेष कामों को पूरा करने के लिए ऐसे व्यक्ति के पास बहुत अधिक ऊर्जा शक्ति बच रहती है। इसीलिए एक सामान्य व्यक्ति जब सुबह के समय केवल ३० मिनट के लिए प्राणायाम करता है, तब वह पूरे दिन अपने को अत्यंत फुरतीला, उत्साही और सक्रिय अनुभव करता है।

प्राणायाम की विभिन्न प्रणालियों के द्वारा अपने श्वसन-तंत्र को श्वास की मन्थरता का प्रशिक्षण देने और क्रमिक एवं सुव्यवस्थित रूप से उसे उसका अभ्यस्त बनाने में किसी प्रकार के संकट की कोई संभावना नहीं है। श्वास की मन्थरता हमें आलसी, निष्क्रिय या तामसिक नहीं बनाती है बल्कि यह रजस् के अधिस्वरों, उसकी हर तरह की अतिशयताओं को न्यून करके सात्त्विक होने की दिशा में अग्रसर करती है। सात्त्विकता से तात्पर्य है सच्चे अर्थों में गतिशील होना और अधिक सक्षम होना।

प्राणायाम की सभी प्रणालियां श्वसन तंत्र को स्वच्छता, सुग्राह्यता और संतुलन प्रदान

करती हैं। इस अध्याय में प्रस्तुत है प्राणायाम की एक महत्त्वपूर्ण प्रणाली **भस्त्रिका**, जो शुद्धिकरण की क्रिया से विशेष रूप से जुड़ी है।

भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका शब्द का अर्थ है धौंकनी। श्वास-प्रश्वास की इस ज़ोरदार क्रिया के लिए वक्ष का धौंकनी की तरह उपयोग किया जाता है।

प्रणाली

- वज्रासन या पद्मासन में बैठिये—मेरुदण्ड सीधा रहे।
- पूरा शरीर ढीला छोड़ दें और चेहरे पर प्रसन्नता का भाव बनाये रखें।
- ज़ोरदार ढंग से सांस लेते हुए वक्ष को धौंकनी की तरह फुलाइये और सांस छोड़ते हुए भीतर की तरफ पटकाइये। शुरू में यह रफ़्तार धीमी हो सकती है, पर पूरी तरह सीख लेने के बाद सांस की रफ़्तार प्रति मिनट १२० आघातों (स्ट्रोक) तक पहुंच जानी चाहिए। पूरी सांस लेने और पूरी सांस छोड़ने पर ध्यान देना आवश्यक है।
- शुरू में १० आघातों के बाद रुक जाइये, (घेरण्ड संहिता आरंभ में २० आघातों का हवाला देती है)।
- इस क्रिया से श्वास अपने-आप रुक जाती है। इसे उतनी देर तक स्थगित रखिए, जब तक यह रह सके। बहुत आयास न करें। सांस के विराम का आनंद लीजिए और इस तरह सांस को देर तक रुके रहने दीजिए।
- इस क्रम को तीन बार दोहराइये।

घेरण्ड संहिता में भस्त्रिका प्राणायाम या कुम्भक की प्रणाली को ग्रहण करने योग्य बड़े सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है :

भस्त्रैव लोहकाराणां यथाक्रमेण संभ्रमेत्।
तथा वायुं च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेत् शनैः ।।
एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम्।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि ।।
त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिकाकुम्भकं सुधीः।
न च रोगो न च क्लेश आरोग्यं च दिने दिने ।।५.७५, ७६, ७७।।

जैसे लुहार की धौंकनी निरन्तर फूलती पटकती रहती है, वैसे ही दोनों नासाछिद्रों में हवा को धीरे धीरे खींचकर तेज़ी से बाहर फेंकिए। श्वास-प्रश्वास में हवा की आवाज़ धौंकनी की तरह होनी चाहिए। इस प्रकार २० बार करने के बाद कुम्भक कीजिए; तब सांस को पूर्वोक्त तरीके से बाहर फेंकिए। विज्ञ जन इस **भस्त्रिका कुम्भक** को तीन बार करें—न कभी कोई रोग होगा न क्लेश और सदा आरोग्य की प्राप्ति होगी।

जैसाकि हम देख सकते हैं **भस्त्रिका** में दो पृथक् भाग हैं। पहला क्रिया भाग है अर्थात् शुद्धिकरण और दूसरा प्राणायाम भाग है, जो सांस की मन्थरता से जुड़ा है। इसलिए **भस्त्रिका को क्रिया और प्राणायाम के बीच का सेतु कहते हैं**। सांस की विराम अवधि पर निर्भर करके, **भस्त्रिका** एक साथ क्रिया के रूप में या श्वसन-अभ्यास को सामान्य बनाने के रूप में या प्राणायाम के रूप में कार्य करती है। इस बात को निम्नांकित चित्र से भली प्रकार समझा जा सकता है।

भस्त्रिका, सेतु

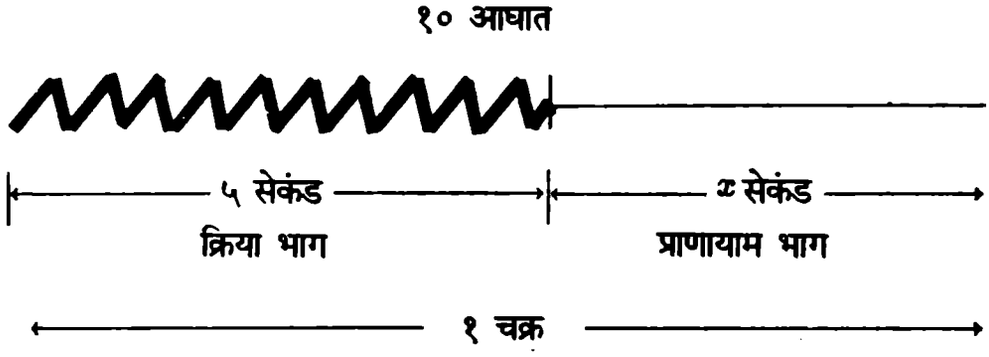

(अ) $x < २$ सेकंड, **क्रिया**
(ब) $x = ३५$ सेकंड, **सामान्य श्वसन**
(स) $x > ४$ सेकंड, **प्राणायाम**

क्रिया भाग में ५ सेकंड का समय १० आघातों के लिए रखा गया है। ५ सेकंड में १० और एक मिनट में १२० आघात। अब हम कुम्भक भाग की अवधि को x सेकंड के हिसाब से प्रस्तुत करेंगे। हम तीन दृष्टांत लेते हैं :

(अ) यदि $x = ५$ सेकंड, तब सांस के दस आघातों के साथ **भस्त्रिका** के एक चक्र के लिए लिया गया समय ५ + ५ के हिसाब से १० सेकंड होगा। इस तरह हम ६ चक्र एक मिनट में या ६० श्वास एक मिनट में पूरी करते हैं। और यह रफ्तार स्वाभाविक ही क्रिया के क्षेत्र में आती है, जैसा कि '**श्वास की गति**' चित्र में दिखाया गया है। इस तरह **भस्त्रिका** क्रिया के रूप में कार्य करती है।

(ब) यदि $x = ३५$ सेकंड, एक चक्र के लिए ४० सेकंड और सामान्य २ मिनट से ऊपर, यहां सांस की रफ्तार प्रति मिनट १५ तक आ जायेगी। यह सामान्य श्वसन का क्षेत्र है। इस तरह भस्त्रिका अनुभागीय श्वसन की तरह है।

(स) यदि $x = ५५$ सेकंड, तब श्वसन दर कम होकर प्रति मिनट १० की संख्या तक आ जायेगी—यह प्राणायाम का क्षेत्र है।

इस प्रकार **भस्त्रिका** में कुम्भक की अवधि यह निश्चय करती है कि यह क्रिया के रूप में काम कर रही है या अनुभागीय श्वसन के रूप में या प्राणायाम के रूप में। **भस्त्रिका को प्राणायाम का रूप देने के लिए कुम्भक की अवधि ३५ सेकंड से कम नहीं होनी चाहिए।**

जिस तरह प्राणायाम के बारे में अनेक भ्रांत धारणाएं हैं, वैसे ही **भस्त्रिका** के बारे में हैं। इस अध्याय में प्रस्तुत तथ्यों और विश्लेषणों से **भस्त्रिका** के बारे में अनेक तियां दूर हो जायेंगी। यह स्पष्ट है, यदि कुम्भक की अवधि पर्याप्त रूप से लम्बी हो **भस्त्रिका** को प्राणायाम कहा जा सकता है। अगर हर चक्र में आघातों की संख्या ायी जा सके, तो कुम्भक की अवधि लम्बी हो जायेगी। बारी बारी से, यदि आघातों संख्या १० से ५ और ३ हो गयी तो **भस्त्रिका** का जो शुद्धिकरण वाला भाग है, ावशाली नहीं रहेगा। इसलिए १० आघातों की उचित अनुकूल संख्या स्वीकार कर ली ा है।

भस्त्रिका और **कपालभाति** के जो मुख्य अंतर हैं वे निम्न तालिका में देखे जा सकते

भस्त्रिका और कपालभाति

लक्षण	कपालभाति	भस्त्रिका
नाम	क्रिया	प्राणायाम
आयतन	केवल शुद्धिकरण भाग (१ मिनट के लिए)	शुद्धिकरण भाग (५ सेकंड के लिए) और प्राणायाम भाग (३५ सेकंड या अधिक)
रफ्तार	१२० आघात एक मिनट	शुद्धिकरण की रफ्तार १२० प्रति मिनट, पर समावेश रफ्तार १० आघात प्रति मिनट से कम
शुद्धिकरण पक्ष	प्रश्वसन के आघात के बाद स्वाभाविक श्वसन	श्वास प्रश्वास दोनों में तेज़ी और सक्रियता
कार्य	उदरीय श्वसन पंप की भांति	मध्यम (वक्षीय) श्वास धौंकनी की तरह
प्रभाव	शुद्धि	स्वच्छता और मृदु प्रशमन की अनुभूति

रीरक्रियात्मक पक्ष

शुद्धिकरण भाग का शरीर में वही क्रियाविज्ञान है जिसका वर्णन हम कपालभाति के ोधन और तमस् के विसर्जन के संदर्भ में कर आये हैं।

शुद्धिकरण के इस भाग के अंत में श्वसन-तंत्र में कार्बन डायोक्साइड की बाध्यता के कारण एक स्वाभाविक विराम की स्थिति आती है। तंत्र में कार्बन डायोक्साइड धीरे-धीरे बनता है और कुछ देर बाद श्वसन सामान्य होने लगता है। कुम्भक की यह अवधि लम्बी हो जाती है यदि हम विराम की इस स्थिति का सचेतन होकर आनंद लें और इसमें रहें। हर चक्र के साथ विराम की अवधि बढ़ती है और विश्राम का स्तर भी बढ़ जाता है, जब कि कार्बन डायोक्साइड के बनने की दर कम हो जाती है।

लाभ

भस्त्रिका में बहुत ताज़गी और स्फूर्ति का अनुभव होता है। इससे केवल तमस् या रुद्धता ही नष्ट नहीं होती, बल्कि हर प्रकार की अतिशयता—अतिसंवेदनशीलता, अतिक्रियाशीलता और अधिस्वरता भी कम हो जाती है। ये दोनों चीज़ें कोशिकाओं की क्रियात्मक क्षमता को बढ़ाती हैं। **हठयोगप्रदीपिका** में भस्त्रिका प्राणायाम को वात, पित्त, कफ को दूर करनेवाला और जठराग्नि को बढ़ानेवाला कहा गया है—**वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम्** ।।२.६५।।

इसके अलावा, गलत ढंग से कुम्भक करने के कारण जिन संकटपूर्ण प्रभावों का सामना करना पड़ता है, उनमें से कुछ प्रभावों का निराकरण करने के लिए **भस्त्रिका** एक श्रेष्ठ अभ्यास है।

पूर्वोपाय

- भस्त्रिका खाली पेट करना चाहिए।
- मेरुदंड सीधा और शरीर सममित रहे।
- इसे केवल सामान्य स्वस्थ मनुष्यों को ही करना चाहिए। अति तनाव वाले या स्थानिकारक्तता हृदय रोग के व्यक्तियों को इसे केवल कुशल मार्गदर्शक की निगरानी में ही करना चाहिए।

कपालभाति के विभिन्न रूपों की तरह ही **भस्त्रिका** के भी कई प्रकार मिलते हैं। एक नासाछिद्र से भस्त्रिका या बारी-बारी से दोनों नासाछिद्रों से भस्त्रिका—ये दो मुख्य रूप भेद हैं। भस्त्रिका के लक्षणों को कायम रखते हुए कपालभाति के पहले बता दिये गये प्रकारों को देखकर पाठक स्वयं इन रूपभेदों का निश्चय कर सकते हैं।

अध्याय ६

खतरों से बचाव : निरापद पथ

जैसा कि हम देख चुके हैं, श्वास की मन्थरता प्राणायाम में पहला चरण है। नव-वल्कुट से श्वसन का नियंत्रण, मस्तिष्क के निम्नतर भाग में अनैच्छिक श्वसन नियंत्रण केन्द्र का अकृतिकरण (अर्थात् उसे प्रभावरहित करना) —यह श्वसन के स्वायत्त नियंत्रण से जागरूक नियंत्रण की दिशा में परिवर्तन है। यह प्रक्रिया अभिज्ञा का निर्माण करती है। इसे हम प्राणायाम का दूसरा चरण कहते हैं।

प्राणायाम में **श्वसन के तीन घटक** (अंग) होते हैं :

- श्वास अर्थात् अन्दर श्वास लेना, जिसे **पूरक** कहते हैं।
- प्रश्वास अर्थात् श्वास छोड़ना, जिसे **रेचक** कहते हैं।
- श्वास-रोधन, जो **कुम्भक** कहलाता है।

कुम्भक को भी आगे तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है :

- श्वास लेने के बाद श्वास-रोधन **पूरक कुम्भक** या **आन्तर्य कुम्भक** कहलाता है।
- श्वास छोड़ने के बाद श्वास-रोधन **रेचक कुम्भक** या **बहिर्कुम्भक** या **शून्यक कुम्भक** कहलाता है (ये दोनों **सहित कुम्भक** कहे जाते हैं)।
- श्वसन की किसी भी स्थिति में श्वास का आयासरहित स्वाभाविक रोधन **केवल कुम्भक** कहलाता है।

कुम्भक के पहले दो प्रकारों में श्वास को आयासपूर्वक रोका जाता है। जब कि केवल कुम्भक निरायास और स्वाभाविक होता है। हठयोग पर उपलब्ध ग्रंथों में कुम्भक के पहले प्रकारों को प्राणायाम के सभी अभ्यासों के अभिन्न अंग के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसी कारण अधिकांश ग्रंथकार और अभ्यासीजन यह विश्वास करते हैं कि बलात् कुम्भक सारी प्राणायाम प्रणालियों का अविभाज्य और अभिन्न अंग है। फिर भी, पतंजलि प्राणायाम प्रणालियों को **कुम्भकसहित** या **कुम्भकरहित** दोनों स्वीकार करते हैं और इसके लिए उन्होंने अपने योगग्रंथ में सर्वथा नये शब्द **विच्छेद** का प्रयोग किया है :

. . . **श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः** ।।योगसूत्र २.४९।।

श्वास-प्रश्वास के गति-प्रवाह का विच्छेद प्राणायाम है।

अनैच्छिक श्वसन-क्रम, जो स्वाभाविक रूप से चल रहा है, उसे जागरूक नियंत्रण के

द्वारा विच्छिन्न करना प्राणायाम का मूल लक्षण है। इसे केवल श्वास-रोधन के द्वारा ही नहीं, बल्कि श्वास-प्रश्वास की मन्थरता द्वारा भी करना चाहिए।

पतंजलि योगसूत्र पर उपलब्ध व्यास-भाष्य **विच्छेद** को श्वास का पूर्ण रोधन कहता है, जब कि वाचस्पतिमिश्र और भोज आदि भाष्यकार दूसरे मत को स्वीकार करते हैं—अर्थात् **विच्छेद केवल गति की न्यूनता है**। पूर्ण रोध या कुम्भक इसके अन्तिम छोर पर घटित होता है।

वाल्मीकि के प्रसिद्ध ग्रंथ **योगवासिष्ठ** में **पूरक-रेचक** की मन्थरता के द्वारा प्राप्त होनेवाली प्राणायाम की दूसरी प्रक्रिया को महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार हम प्राणायाम की दो सर्वथा भिन्न शाखाओं को बड़े स्पष्ट रूप से अलग-अलग कर सकते हैं। पहली वह जिसमें **बलात्** (प्रयत्नपूर्वक किया गया) **कुम्भक** प्राणायाम प्रणालियों का अनिवार्य अंग है और जिसे **हठयोग शाखा** के रूप में जाना जा सकता है। दूसरी वह, जिसमें बलात् कुम्भक का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता, बल्कि पूरा ज़ोर श्वसन-प्रक्रिया की उस दीर्घसूत्रता या मन्थरता को दिया जाता है जो **केवल कुम्भक** की स्थिति प्रदान करती है। इसे **वसिष्ठ शाखा** कहा जाता है। फिर भी, इन दोनों शाखाओं का उद्देश्य विशेष रूप से और सारी प्राणायाम प्रणालियों का उद्देश्य सामान्य रूप से केवल कुम्भक को अधिक से अधिक लम्बी अवधि के लिए प्राप्त करना है।

पतंजलि बलात् कुम्भक या प्रयत्नपूर्वक किये गये कुम्भक एवं प्रयत्नरहित कुम्भक के बीच के अन्तर को इस प्रकार कहते हैं :

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।।योगसूत्र २.५०।।

रेचक (बाह्य) **पूरक** (अभ्यन्तर) और **स्तम्भ** (कुम्भक) देश, काल और संख्या के मापदण्ड के अनुसार दीर्घ और सूक्ष्म हो जाता है।

व्यास की व्याख्या के अनुसार प्राणायाम के ये तीनों प्रकार **रेचक कुम्भक प्राणायाम, पूरक कुम्भक प्राणायाम** और **स्तम्भवृत्ति प्राणायाम** हैं।

किन्तु वाचस्पतिमिश्र और भोज इन तीनों को प्राणायाम के तीन अंगों के रूप में स्वीकार करते हैं—रेचक, पूरक और कुम्भक।

पर यह निश्चित है कि सारे व्याख्याकार इस बात पर सहमत हैं कि इस सूत्र में उल्लिखित स्तम्भवृत्ति का सम्बन्ध बलात् कुम्भक से है। पतंजलि यहां पूरक और या रेचक के अंत में प्रयत्नपूर्वक किये गये पहले प्रकार के कुम्भक की बात करते हैं। पर इसी सूत्र के बाद अगले सूत्र में वे प्राणायाम के चतुर्थ अंग का उल्लेख करते हैं—अर्थात् उस केवल कुम्भक का, जिसे लम्बे अभ्यास और गहन प्रशमन के द्वारा प्राप्त किया जाता है और जो आयास रहित कुम्भक है।

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ।।योगसूत्र २.५१।।

जो रेचक-पूरक या बाह्य अभ्यन्तर के सम्बन्ध से बद्ध नहीं है अर्थात् जो इन दोनों का उल्लंघन करता है वह चौथा है। यह स्थान, काल और संख्या के बन्धन से रहित है, निरायास और अविमर्शकृत है। यह **केवल कुम्भक** है, जिसका वर्णन योग उपनिषदों में मिलता है।

आक्षेपी का अर्थ है सम्बन्धरहित या अतिक्रमणशील। सभी व्याख्याकार इस बात पर सहमत हैं कि यह सूत्र आयासरहित **केवल कुम्भक** का निर्देश करता है जो सारे प्राणायामों का उद्देश्य है।

इस प्रकार प्राणायाम की ये दोनों शाखाएं सायास या बलात् कुम्भक के स्वीकार या अस्वीकार में मूलभूत रूप से मतभेद रखती हैं।

अब हम योग की **हठयोग शाखा** और **वसिष्ठशाखा** का स्पष्टीकरण करेंगे और निम्नांकित आरेखीय चित्रों के द्वारा यह बतायेंगे कि कैसे ये दोनों शाखाएं और दोनों के अन्दर भिन्न प्रकार से किया गया अभ्यास हमें उसी एक लक्ष्य तक ले जाता है।

हठयोग शाखा

- वज्रासन या पद्मासन में बैठिए। मेरुदंड सीध में रहे।
- एक सेकंड तक श्वास लीजिए। पूरा श्वास लें (**पूरक**)।
- दो सेकंड तक श्वास को रोककर रखें (**पूरक कुम्भक**)।
- चार सेकंड तक श्वास छोड़ें (**रेचक**)।
- आठ सेकंड तक श्वास रोक कर रखें (**रेचक कुम्भक**)।

अनुपात : १ :२ :४ :८ रहेगा। यह प्राणायाम का एक चक्र पूरा करता है। इस प्राणायाम के तीन से नौ चक्र पूरे करें।

अभ्यास के द्वारा, कुम्भक की अवधि बढ़नी चाहिए और श्वास-रोध की सामर्थ्य में भी वृद्धि हो। प्राणायाम का अभ्यासी इसी अनुपात के साथ प्राणायाम कर सकता है, पर अवधि में वृद्धि कर सकता है—जैसे, श्वास (**पूरक**) दो सेकंड, रोध चार सेकंड, प्रश्वास (**रेचक**) आठ सेकंड, और रोध सोलह सेकंड। वह रेचक और पूरक की वही अवधि रख सकता है, पंर कुम्भक की अवधि बढ़ा सकता है—जैसे, एक सेकंड पूरक, चार सेकंड पूरक कुम्भक, चार सेकंड रेचक, और सोलह सेकंड रेचक कुम्भक। निरन्तर अभ्यास से कुम्भक की दीर्घता १ : ८ : ४ : १६; १ : १६ : ४ : ३२ बढ़ती चली जा सकती है। **प्रयत्नपूर्वक किये गये कुम्भक की दीर्घता जैसे-जैसे बढ़ती है, कुम्भक का मध्य भाग प्रयत्नरहित हो जाता है और केवल कुम्भक बन जाता है। और इस तरह प्राणायाम का अभ्यास करनेवाले को दीर्घ से दीर्घतर अवधिवाले केवल कुम्भक की प्राप्ति होती है।**

हठयोगशाखा के खतरे

इस शाखा में, **बन्धों** के समुचित प्रयोग के बिना **कुम्भक** का अभ्यास करना खतरों से घिरा हुआ है। इसलिए **बन्धों** के सही प्रयोग पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है।

एक व्यक्ति हमारे पास आया, जिसमें विक्षिप्तता के लक्षण थे, किसी प्रकार का केन्द्रीकरण नहीं था, बोलने और सोचने में अनर्गलता और असम्बद्धता थी। वह एक होनहार विद्यार्थी था और डॉक्टर की उपाधि के लिए एक शोध प्रबन्ध पर कार्य कर रहा था। कोई किताब पढ़कर उसने प्राणायाम का अभ्यास आरंभ किया। शुरू में जो परिणाम मिले, वे बहुत उत्साहप्रद थे—बढ़ी हुई एकाग्रता-शक्ति, स्मृति में वृद्धि, पूरे दिन स्मृति और ताज़गी। करीब दो या तीन सप्ताह बाद उसने महसूस किया कि परिणामों का रुख उतार की तरफ है। उसने कुम्भकों की संख्या बढ़ा दी। उसने अपनी इच्छाशक्ति लगायी और कुम्भकों की अवधि में वृद्धि कर दी—और अन्ततः स्नायुरोगी होकर विक्षिप्त या अर्धविक्षिप्त-सी अवस्था में हम तक पहुंचा।

विस्तृत जांच-पड़ताल करने के बाद पता लगा कि उसने गले की घंटी में श्वास रुद्ध करने के लिए **जालंधर बंध** का कभी उपयोग नहीं किया था। इसके बजाय, उसने ऊपर के समग्र नासा-पथ पर श्वास के पूरे दबाव को बनाये रखा। नाक को कसकर रुद्ध करके वह श्वास पर नियंत्रण करता था। ऊपर की ओर के इस दबाव ने स्वाभाविक ही उसके ऊपरी भागों को आघात दिया और वह इस स्थिति में पहुंच गया। इसलिए, यह ध्यान रखना चाहिए कि कुम्भक प्राणायाम में जालन्धर बन्ध का प्रयोग अनिवार्य है। उसने प्रशान्ति कुटीर के आरोग्यधाम में दस दिन के अन्दर सामान्य स्थिति प्राप्त कर ली।

जालन्धर बन्ध

जालन्धर बन्ध (घंटी रोध)

यह बन्ध आन्तर्यकुम्भक या पूरक कुम्भक के अभ्यास में श्वास लेने के बाद घंटी के स्थान से नीचे श्वास-रोध के लिए प्रयोग किया जाता है।

गले को सिकोड़िये और श्वास लेने के बाद गल-खांचे पर वक्ष के ऊपर ठुड्डी को ज़ोर से दबाइये। (गल खांचा जत्रुक हड्डियों के बीच का स्थान है।) श्वास कंठ में रुक जाती है। अभ्यास करते-करते घंटी पर हवा का दबाव मुक्त हो जायेगा और कंठ के निकट श्वास-रोध होने पर सारे तंत्र को विश्रान्ति का अनुभव होगा।

बैंक में काम करनेवाले एक अफसर को कभी डायरिया और कभी कब्ज़ के दौरे पड़ने लगे। दवाओं से उसे विशेष लाभ नहीं हुआ। वह समझ गया कि एक महीने पहले कुम्भक प्राणायाम करने के बाद से ही ऐसा हुआ है। उसने मूलबन्ध का प्रयोग नहीं किया, जब कि वह जालन्धर बन्ध का अभ्यास ठीक-ठीक कर रहा था। प्रशान्ति में लगभग एक सप्ताह के अंदर उसकी आंतसम्बन्धी समस्या सुलझ गयी और तब उसने प्राणायाम और ध्यान में काफी अच्छी प्रगति की।

मूलबन्ध (गुदा रोध)

मूलाधार (गुदा और जननेन्द्रिय के बीच का भाग) को एड़ी से दबाइये, गुदा को संकुचित कर ऊपर खींचिए; इस प्रकार अपान का कर्षण होता है और मूलबन्ध बन जाता है।

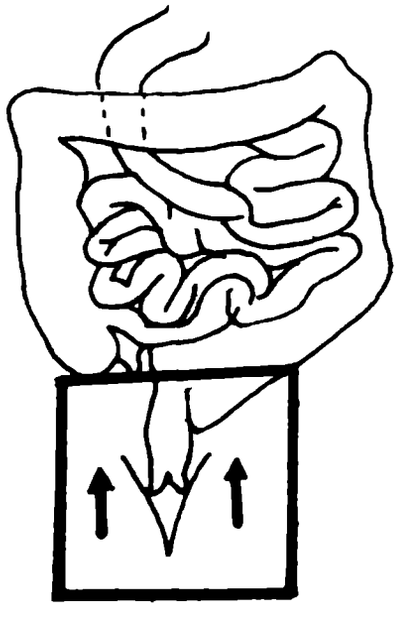

मूलबन्ध

मैंने एक बड़े योगी को देखा जिनका पेट इतना फूला हुआ था कि उनके पूरे शरीर को ही अपरूप कर रहा था। मैंने यह भी देखा कि वे मिताहारी थे और दिन में केवल

एक बार भोजन लेते थे। पहले वे स्थूलकाय भी नहीं थे। बाद में तो उन्हें जठर शोथ और अम्ल दोनों ही रोग हो गये थे। वे अपने शरीर की परवाह भी नहीं करते थे। उन्होंने कष्ट को मृत्यु पर्यन्त अपने जीवन का एक हिस्सा मान लिया था। (मैंने समझ लिया कि योग के गलत अभ्यास से ऐसा हुआ है)।

हमारे पास कुछ संख्या में ऐसे लोग आते रहे हैं, जिन्होंने कुछ समय के लिए ही कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास किया और उसके बाद उन्हें जठरशोथ, पेट दर्द, अति अम्लता आदि रोग हो गये।

इन रोगियों का परीक्षण करने से पता लगा कि ये वे लोग थे, जिन्होंने अपने प्राणायाम-अभ्यास में तीसरे बन्ध **उड्डीयान** का प्रयोग नहीं किया था। ऊपर और नीचे के भाग तो जालन्धर और मूलबन्धों के कारण अवरुद्ध हो गये थे, पर दबाव ने पेट की मांस पेशियों को बाहर उभर आने के लिए बाध्य किया और पेट में अम्लीय स्रवण केन्द्रों को अत्यधिक उद्दीप्त कर दिया। निराकरण के रूप में इन पर जो उपाय काम में आया, वह **उड्डीयान बन्ध** था।

उड्डीयान बन्ध (उदर रोध)

इस बन्ध को **उड्डीयान बन्ध** इसलिए कहते हैं क्योंकि इसके अभ्यास से प्राण एक बिन्दु पर केन्द्रित होकर सुषुम्ना के माध्यम से ऊपर उठता है। उड्डीन का अर्थ है उड़ना। **उड्डीयान बन्ध** के द्वारा महापक्षिणी रूपिणी **शक्ति** ऊपर की ओर आसानी से उड़ती है।

नासिका से गहरी श्वास लेकर मुंह से श्वास को पूरी तरह बाहर छोड़िए। तब जालन्धर बन्ध के बाद पेट की मांस पेशियों को अन्दर की तरफ इतना खींचिए कि वे रीढ़ की हड्डी तक जा लगें। इसमें नाभि को ऊपर की तरफ उठाना चाहिए। कुछ क्षण इसी स्थिति को बनाये रखें। श्वास लेने से पहले पेट को ढीला छोड़ दें, जालन्धर बन्ध मुक्त कर दें, तब नासिका से धीरे-धीरे श्वास लें।

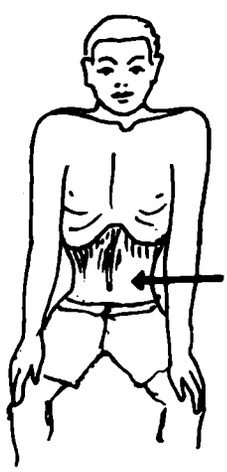

उड्डीयान बन्ध

इस प्रकार, कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करते समय इन तीन बन्धों का होना अनिवार्य है। इनमें से किसी का भी अनादर या गलत प्रयोग कितने ही खतरों को जन्म दे सकता है और स्वास्थ्य की हानि हो सकती है। नीचे कुम्भक की एक सुरक्षित विधि प्रस्तुत है।

त्रिबन्ध प्राणायाम

- पद्मासन या वज्रासन में सीधे बैठ जाइये। प्रसन्न भाव रहे।
- दो सेकंड के लिए पूरा श्वास लीजिए। मूल बन्ध का प्रयोग करें।
- जालन्धर बन्ध का उपयोग करें और कंठ में श्वास रोक लें; उड्डीयान की भांति पेट को थोड़ा-सा अन्दर खींचें।
- कुम्भक को चार सेकंड तक बनाये रखें।
- जालन्धर बन्ध मुक्त कर दें और खूब अच्छी तरह श्वास को आठ सेकंड तक बाहर छोड़ें।
- कुम्भक को सोलह सेकंड तक जारी रखने के लिए जालन्धर और उड्डीयान बन्ध का उपयोग करें।
- श्वास लेने के लिए जालन्धर बन्ध मुक्त कर दें।

यह एक चक्र है। चक्रों की निर्दिष्ट संख्या तक यह प्राणायाम करें।

श्वास का बलात् रोध इस कुम्भक प्राणायाम का अनिवार्य अंग है; पर अगर शिथिलीकरण या विश्रान्ति की युक्ति के साथ कुम्भक किया जाये तो बड़ी तेज़ी से प्रगति हो सकती है। हर स्थिति में, प्राणायाम के खतरों को कम किया जा सकता है यदि मन्थरता को अपनाया जाये और कुशलता के साथ कार्य किया जाये।

वसिष्ठ शाखा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस शाखा में सायास या बलात् कुम्भक का उपयोग नहीं होता है। बल्कि **प्रयत्नरहित स्वाभाविक रोध** को इसमें विशेष स्थान, समर्थन एवं प्रोत्साहन दिया गया है। हठात् निरोध से रोग आदि बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं, इसलिए योग के क्रमिक अभ्यास द्वारा प्राण-स्पन्दन को शान्त करने का निर्देश किया गया है। प्राण को शान्त करने के लिए श्वास-प्रश्वास की मन्थरता, लयात्मकता का अभ्यास आवश्यक है—अभ्यास से रोग आदि की बाधाएं नहीं रहतीं—**अभ्यासेन निरा-बाधम् . . . एवं अभ्यासात् दृढतां यातो . . . ।। योगवासिष्ठ** ५.७८.४०-४१।। अभ्यास के द्वारा प्राण का स्पन्दन क्षय को प्राप्त होता है, मन शान्त हो जाता है, और निर्वाण अवस्था ही शेष रह जाती है :

अभ्यासेन परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते।
मनः प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते ।। ५.७८.४६।।

इस निर्वाण-स्थिति की लयता का किंचित् अनुभव केवल कुम्भक में होता है। अतएव वसिष्ठ का राम को उपदेश है '**अभ्यासवान्भव**'।

महर्षि वसिष्ठ ने चित्त के प्रशमन के लिए ही योग के हर अभ्यास को स्वीकार किया है, भले ही वह ध्यान हो, अन्य प्रणालियों का प्रयोग हो, या प्राणायाम हो। उन्होंने प्राण के रोध का चित्त के शान्त्यर्थ निर्देश किया है :

योगिनश्चित्तशान्त्यर्थं कुर्वन्ति प्राणरोधनम्।
प्राणायामैस्तथा ध्यानैः प्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः ॥५.९१.२६॥

आगे वे कहते हैं :
चित्तोपशान्तिफलदं परमं साम्यकारणम्।
सुभगं संविदः स्वास्थ्यं प्राणसंरोधनं विदुः ॥५.९१.२७॥

प्राण आदि वायुओं के स्पन्दन का सहज स्वाभाविक निरायास रोध ही योगी वसिष्ठ को इष्ट है। यह शरीर के विभिन्न अवयवों में प्राण आदि वायुओं का हठात्-बलात् रोध या बन्ध नहीं है—पर अभ्यास के माध्यम से स्वयं प्राप्त होनेवाला रोध है, जो सुभग, सुन्दर, स्वास्थ्यप्रद और शान्तिदायक है।

वसिष्ठ शाखा . . . केवल कुम्भक
अभ्यास के बाद निरायास

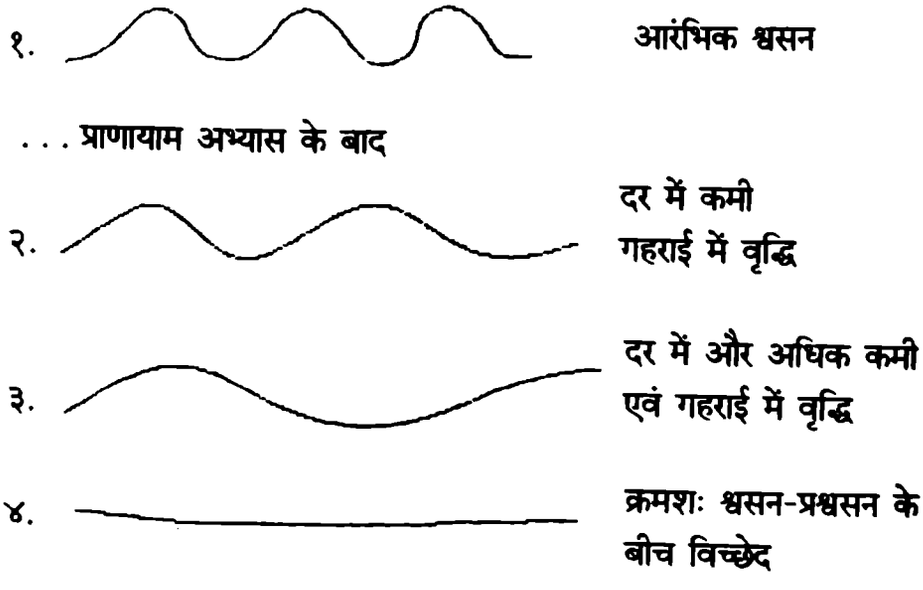

योगवासिष्ठ से जुड़ी यह योग शाखा हठयोग शाखा के सभी खतरों से परे है। जब कि इसकी पूरी प्रक्रिया उतनी ही प्रभावशाली है, बल्कि इसमें प्रगति की संभावनाएं अधिक बड़ी हैं क्योंकि उनमें स्थिरता और स्थायित्व है।

इसलिए हम अपने **योग अनुसंधान संस्थान** में तथा बाहर भी योग की इसी शाखा का अनुसरण करते हैं। जब हम योग प्रणालियों को सार्वजनिक स्तर पर एक सामाजिक रूप से संगत और उपयोगी विज्ञान के रूप में लोकप्रिय करना चाहते हैं, तो सुरक्षा और निरापदता हमारी पहली चिन्ता और सम्बद्धता है। हमारे लिए यह प्रसन्नता की बात है कि लगभग पन्द्रह वर्ष के अभ्यास के दरम्यान, भारत एवं विदेश में तथा वृद्धजन, युवा एवं बच्चों को योग सिखाते हुए आज तक एक भी व्यक्ति को किसी अभ्यास के दुष्परिणामस्वरूप स्वास्थ्य-संकट का सामना नहीं करना पड़ा है।

इस पुस्तक के शेष भाग में हमने वसिष्ठ-शैली में की जानेवाली प्राणायाम की विभिन्न प्रणालियों का विवरण प्रस्तुत किया है। इन प्राणायामों में यदि हम हठात् कुम्भकों और उनके अनुपातों का समावेश कर दें, तो इन्हें हठयोग शाखा के प्राणायामों के रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है।

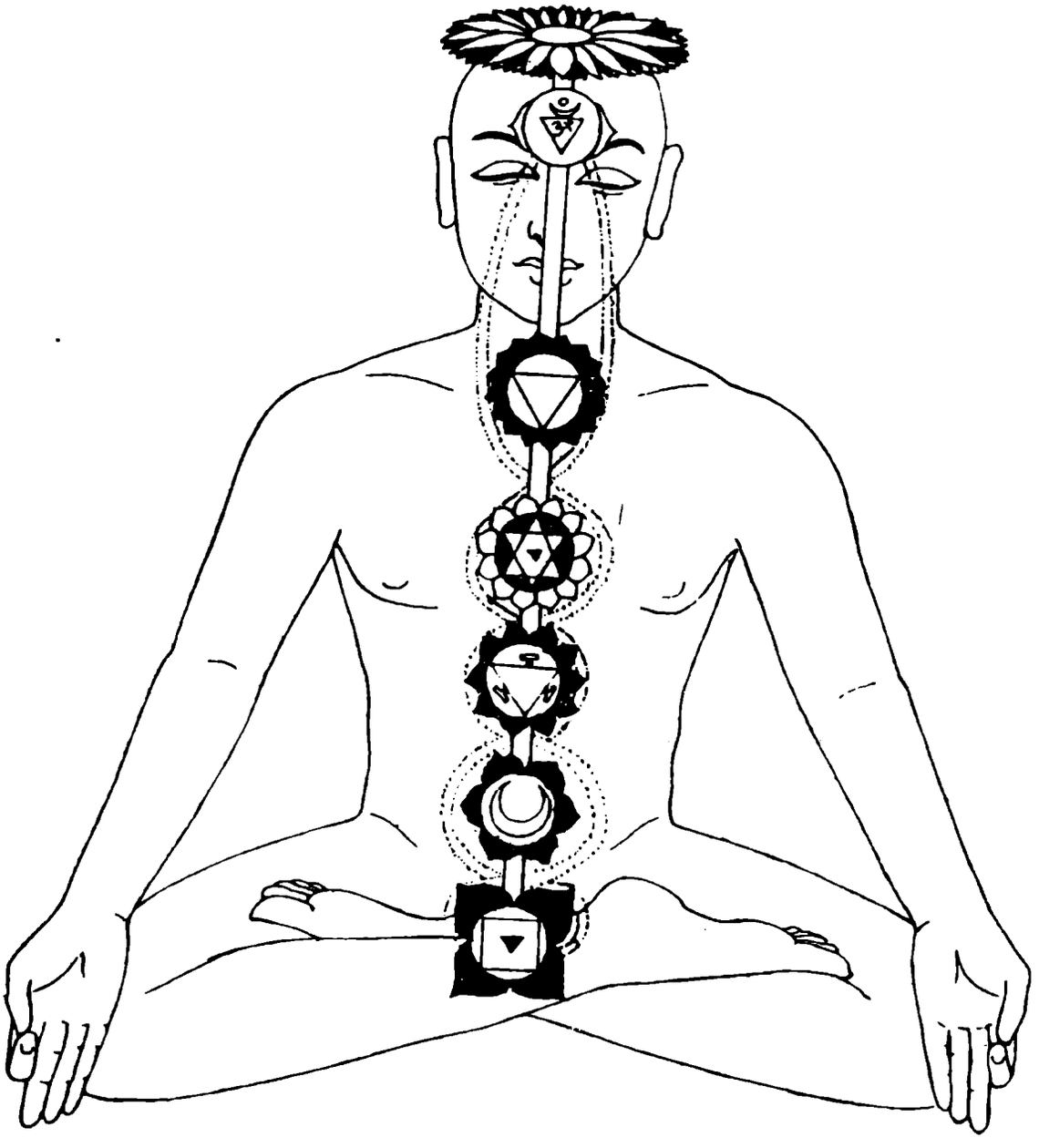

प्राणमय शरीर में कुंडलिनी का मार्ग

अध्याय ७

प्राणमय शरीर : संरचना और सन्तुलन

श्वसन क्रियाविज्ञान में दो नासाछिद्रों की समस्या का समाधान अभीतक नहीं हो सका है। बायें नासाछिद्र से ली गयी सांस और दायें नासाछिद्र से ली गयी सांस के बीच क्या कोई भेद है ? क्या इनसे कोई अन्तर पड़ता है ? अभी हाल ही में कुछ लोगों पर किये गये विद्युत मस्तिष्क अभिलेखी प्रयोगों ने यह बताया कि बायें और दायें नासाछिद्रों से ली गयी श्वास में बहुत महत्त्वपूर्ण अन्तर है। उन्हें पहले बायें नासाछिद्र से और फिर दायें नासाछिद्र से सांस लेने के लिए कहा गया—जो अन्तर सामने आया, उससे यह प्रतीत होता है कि बायें नासाछिद्र से ली गयी श्वास मस्तिष्क के दायें भाग के कार्य को प्रभावित और प्रोत्साहित करती है तथा दायें नासाछिद्र से किया जानेवाला श्वसन मस्तिष्क के बायें भाग के कार्य का प्रवर्धन और प्रवर्तन करता है। बहरहाल, इस दिशा में पूर्ण परिणामों को प्राप्त करने के लिए और अधिक शोध एवं अनुसंधान की आवश्यकता है।

योग में, बायें और दायें नासाछिद्र से ली जानेवाली श्वास का अन्तर और आपेक्षिक महत्त्व हज़ारों सालों से जाना-माना है। योग-ग्रंथों में इनका विस्तृत विवरण हमें प्राप्त है। बायें नासाछिद्र का श्वसन चन्द्रनाड़ी के बीच बहनेवाले प्राण की अभिव्यक्ति है और दायें नासाछिद्र का श्वसन सूर्यनाड़ी के बीच प्रवाहित होनेवाले प्राण का प्रकटीकरण है। ये नाड़ियां क्या हैं और प्राणायाम में इनका क्या महत्त्व है, इसका परिचय हम इस अध्याय में प्राप्त करेंगे।

भौतिक और प्राणिक शरीर का रचना-विज्ञान

चिकित्सा-क्षेत्र में हुई शोधों ने इस भौतिक शरीर के अनेक गुप्त रहस्यों का समाधान प्रस्तुत किया है। जीवन की मूलभूत लघुतम इकाइयों के रूप में कोशिकाओं, ऊतकों, इन्द्रियों और अवयवों, भिन्न तन्त्रों और पूरे मनुष्य शरीर को पूरी तरह और ठीक-ठीक समझा गया है। जैसा कि हमने पहले बताया, हमारे प्राचीन ऋषियों ने **प्राणमय कोश** नाम से ज्ञात प्राणिक शरीर के ढांचे और उसके क्रियात्मक रूप को भली प्रकार समझा था। जिस प्रकार हमारे भौतिक शरीर में बड़ी संख्या में रक्तवाहिकाएं और तंत्रिकाएं हैं, वैसे ही हमारे **प्राणमय कोश** में बहत्तर लाख नाड़ियां हैं, जिनके बीच से व्यान वायु प्रवाहित होता है। ये नाड़ियां पूरे प्राणिक शरीर में फैली हुई हैं। प्राणमय कोश में तीन प्रमुख नाड़ियां हैं जिन्हें इडा, पिंगला और सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्ना मेरुदंडीय नाल के केन्द्र में स्थित है। इडा और पिंगला नाड़ी सीधी और उदग्र सुषुम्ना नाड़ी के चारों तरफ कुंडलित होकर मूलाधार से ऊपर की तरफ जाती हैं। इडा को चन्द्र नाड़ी कहा जाता है और पिंगला को सूर्यनाड़ी कहते हैं। जब प्राण बायें और दायें नासाछिद्रों से क्रमानुसार श्वास के रूप में अपने को अविराम प्रकट करता हुआ इडा और पिंगला नाड़ी के बीच रहता है, तब केन्द्रीय नाड़ी सुषुम्ना लगभग हम सभी में क्रियाशील नहीं रहती है।

सूर्य, जैसा कि नाम से ही पता लगता है, स्वभाव में ज्वलनशील है। यह उद्दीप्त करता है। और चन्द्र, यह प्रकृति से ही शीतल है—यह शान्त करता है, प्रशमन देता है।

अपचयक और उपचयक प्रक्रियाएं

आधुनिक शरीर क्रिया-विज्ञान में यह सुविदित तथ्य है कि हमारे मानव तंत्र में बहुत बड़ी संख्या में कोशाणु निरंतर बनते हैं और उसी संख्या में वे नष्ट हो जाते हैं। चिकित्सा-क्षेत्र के आविष्कारक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि लगभग सात साल में हमारे शरीर में सारी कोशिकाएं प्रतिस्थापित हो जाती हैं अर्थात् पुरानी कोशिकाओं के स्थान पर नयी कोशिकाएं आ जाती हैं। हर सातवें साल में हम एक नये व्यक्ति होते हैं। हमारा संपूर्ण जीवन **अपचय** (विनाश) और **उपचय** (सृजन) की प्रक्रियाओं से संचालित है। अब हम उस दर का उल्लेख करेंगे, जिससे कोशाणु क्षय को प्राप्त होते हैं और जिस दर से उनका निर्माण होता है। हम अपने संपूर्ण जीवन को तीन अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं :

प्रथम अवस्था : जहां निर्माण क्षय से बहुत अधिक है।

बचपन में बहुत अधिक कोशाणुओं का निर्माण (उपचय) होता है, इसलिए शरीर बढ़ता विकसित होता है।

दूसरी अवस्था : जहां सन्तुलन है।

जब हम बड़े हो जाते हैं कोशाणुओं का निर्माण और क्षय लगभग बराबर होता है—ये दोनों क्रियाएं सन्तुलित हो जाती हैं।

तीसरी अवस्था : जहां क्षय निर्माण से कहीं अधिक है।

जीवन-चक्र को संचालित करती
उपचय और अपचय दरें

बचपन उपचय >> अपचय

युवावस्था उपचय = अपचय

वृद्धावस्था उपचय << अपचय

वृद्धावस्था आने पर कोशाणुओं का अपचय बढ़ जाता है, उपचय बहुत कम रह जाता है और कोशाणुओं का यह क्षय मृत्यु में बदल जाता है।

उपचय और अपचय का संयोजन उपापचयी दर है।

उपचय और अपचय की ये प्रक्रियाएं इड़ा (उपचय) और पिंगला (अपचय) नाड़ियों के बीच होनेवाले प्राण के प्रवाह से संचालित होती हैं।

यह भी जानी-समझी बात है कि अनुकम्पी परानुकम्पी संतुलन जो समस्थापन कहलाता है, रचनात्मक स्वास्थ्य प्रदान करने में बहुत महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतया, अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र स्वभाव में उद्दीपन लाता है और परानुकम्पी तंत्र पूरे शरीर को समता तक ले आता है तथा स्वभावतः प्रशमनशील है। इस संदर्भ में भी ऐसा प्रतीत होता है कि इड़ा और पिंगला परानुकम्पी और अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र के क्रमिक कार्य में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं।

बहुत से लोगों में यह धारणा है कि इड़ा और पिंगला नाड़ी परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र और अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं। इस तरह के लोग यहां तक कल्पना कर बैठते हैं कि चक्र मेरुदंड के विभिन्न स्तरों पर विद्यमान जालकों के सिवा और कुछ नहीं हैं। और प्राण केवल आक्सीजन या श्वास है।

हमने अभीतक जिन तथ्यों को प्रस्तुत किया है, उनसे पाठकों को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि इड़ा-पिंगला आदि नाड़ियां और चक्र हमारे प्राणमय कोश में विद्यमान हैं। उन्हें चीर-फाड़ द्वारा भौतिक शरीर में नहीं पाया जा सकता। हमारे ऋषि और योगी इस विषय में एकदम स्पष्ट थे। इसलिए, अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र और परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र प्राणमय कोश में विद्यमान पिंगला और इड़ा नाड़ियों के भौतिक या शारीरिक अवयव हैं—सूक्ष्म नाड़ियों का स्थूल अभिव्यक्तिकरण। और इन नाड़ियों में बहनेवाला प्राण का प्रवाह अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र एवं परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र के माध्यम से शिराओं के आवेगों, अपचय और उपचय को नियंत्रित और संचालित करता है—इसलिए प्राणायाम के अभ्यास में इन दोनों तंत्रों को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।

हमारे ऋषियों ने जिस अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष का आविष्कार किया था, वह यह है कि प्राण का प्रवाह इड़ा और पिंगला के माध्यम से क्रमशः बायें और दायें नासाछिद्र से सम्बन्धित है। जब दो नासाछिद्रों के बीच सांस का सन्तुलन हो जाता है और श्वास अभिज्ञा के साथ अत्यन्त मन्थर हो जाता है, तब प्राण के सारे असन्तुलन लुप्त हो जाते हैं। प्राणमय कोश में प्राप्त यह प्राणिक सन्तुलन सुषुम्ना को खोल देता है और सूक्ष्म प्राण इस केन्द्रीय नाड़ी सुषुम्ना में ऊपर की ओर संचरण करने लगता है। सुषुम्ना के इस खुलने को कुंडलिनी जागरण कहा जाता है। सूक्ष्म प्राण का या प्राण का यह सूक्ष्म संचरण हमारे अन्दर की प्रसुप्त शक्तियों और क्षमताओं के प्रकट होने में सहायक होता है। ये अन्तर्निहित क्षमताएं अतिप्राकृतिक शक्तियां कहलाती हैं।

प्राण या श्वास में सन्तुलन स्थापित करने के लिए योग ग्रंथों ने प्राणायाम की अत्यन्त सरल प्रणालियां दी हैं, जिन्हें हम अनुलोम विलोम प्राणायाम के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं। अनुलोम का अर्थ है श्वास लेना और विलोम का अर्थ है सांस छोड़ना। इन्हें एक नासाछिद्र से, दोनों नासाछिद्रों से बारी-बारी से तथा दोनों नासाछिद्रों से एक साथ मन्थर गति से श्वास लेने और छोड़ने का संयोजन या क्रम-परिवर्तन कहा जाता है।

इस प्राणायाम की छह संभावनाओं को नीचे की तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

अनुलोम-विलोम प्राणायाम

१. **दोनों नासाछिद्र :**	सुख प्राणायाम
२. **एक नासाछिद्र :**	अ. चन्द्रानुलोम विलोम ब. सूर्यानुलोम विलोम
३. **एकान्तर नासाछिद्र**	अ. चन्द्रभेदन ब. सूर्यभेदन स. नाडीशुद्धि

१. दोनों नासाछिद्र

इसमें श्वसन-प्रश्वसन दोनों नासाछिद्रों से किया जाता है। इस प्राणायाम को दीर्घश्वसन भी कहते हैं, यह **सुख प्राणायाम** है।

- किसी भी आसन में सुखपूर्वक बैठ जाइये; यदि आवश्यक लगे तो आरंभ करने के लिए गद्देदार कुर्सी या आरामकुर्सी पर भी बैठा जा सकता है। कुछ समय के अभ्यास के बाद आप बड़े आराम से वज्रासन या पद्मासन में बैठ सकेंगे।
- शरीर के सब अंगों को ढीला छोड़ दीजिए; चेहरा प्रसन्न रहे।
- जितनी मन्थरता से गहरी श्वास ले सकें, लीजिए। ऐसा अनुभव हो जैसे कि सारा शरीर ऊर्जित और हल्का होता जा रहा है।
- श्वसन की पूर्णता के अंत में गतिशून्यता का आनन्द लीजिए और केवल कुम्भक को प्रोत्साहन दीजिए।
- अत्यन्त मन्थरता और प्रयत्नरहित होकर श्वास छोड़िए।
- श्वास को स्वयं रुक जाने दीजिए—केवल कुम्भक। अनुभव कीजिए कि पूरा शरीर शिथिल होकर विश्राम कर रहा है।

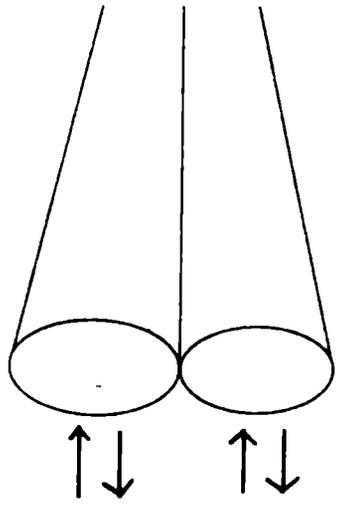

सुख प्राणायाम

इस प्राणायाम को बिस्तर पर लेटकर या खड़ी स्थिति में भी किया जा सकता है। अपने काम के स्थान पर भी इसे कर सकते हैं। दिन में कई बार कई चक्रों को करने से यह प्राणायाम आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत कर सकता है। इससे दबाव और तनाव कम होते चले जायेंगे, स्मृति और एकाग्रता में वृद्धि होगी, जीवन की प्रकृति और गुणवत्ता में सकारात्मक परिवर्तन आयेगा और स्वास्थ्य में रचनात्मक सुधार होगा।

इस प्राणायाम को बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं। सुख प्राणायाम आधारी उपापचयी दर को घटाता है, प्राणशक्ति को बढ़ाता है, प्रतिरक्षक तंत्र को मज़बूत करता है। इस प्राणायाम को हम स्वास्थ्यलाभ की सारी स्थितियों में प्रयुक्त करते हैं। कैन्सर रोगियों तक ने इस सरल प्रणाली के लाभों को प्राप्त करना आरंभ कर दिया है।

२. एक नासाछिद्र

इस प्राणायाम में, श्वसन-प्रश्वसन या तो बायें नासाछिद्र से या दायें नासाछिद्र से किया जाता है। बायें नासाछिद्र से किया जानेवाला श्वसन-प्रश्वसन **चन्द्रानुलोम विलोम** कहलाता है और दायें नासाछिद्र से किया जानेवाला **सूर्यानुलोम विलोम** कहलाता है।

अ. चन्द्रानुलोम विलोम प्राणायाम

इसमें श्वसन-प्रश्वसन केवल बायें नासाछिद्र (चन्द्रनाड़ी) से किया जाता है। दायें नासाछिद्र को नासिका मुद्रा द्वारा दायें अंगूठे से पूरे समय बंद रखा जाता है। कंधे झुके और शिथिल रहने चाहियें, कोहनी पेट पर टिकी रहे, चेहरा प्रसन्न और शांत बना रहे।

चन्द्र अनुलोम विलोम प्राणायाम

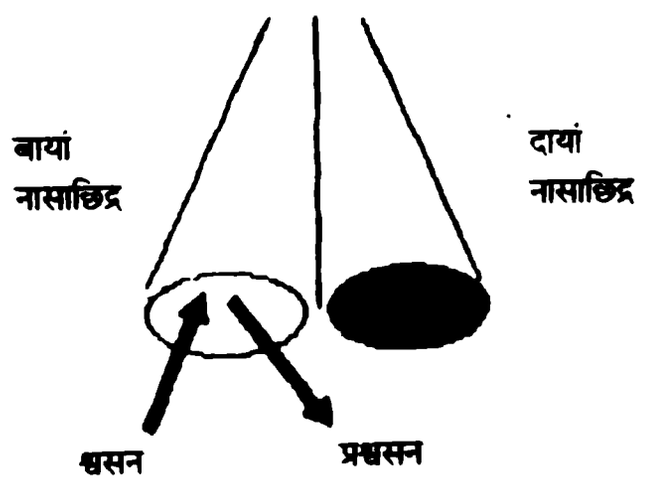

सूर्य अनुलोम विलोम प्राणायाम

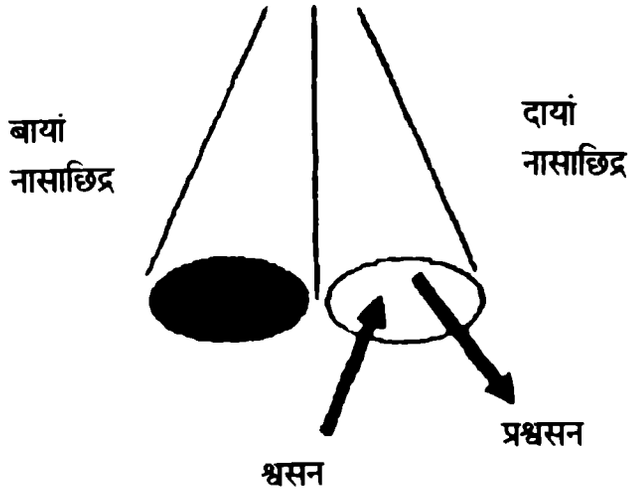

(ब) सूर्यानुलोम विलोम प्राणायाम

इसमें श्वसन-प्रश्वसन केवल दायें नासाछिद्र (सूर्य नाड़ी) से किया जाता है और बायें नासाछिद्र को पूरे समय बंद रखा जाता है।

लाभ

शारीरिक लाभ : इन प्राणायामों से नासा मार्गों के स्वच्छ होने में सहायता मिलती है। नियमित और लम्बे अभ्यास से दोनों नासाछिद्रों में श्वास का प्रवाह अबाध और शान्त एवं मन्थर हो जाता है।

चिकित्सीय लाभ : यह **नासिका-प्रत्यूर्जता** (**विचलित** नासा पट) में बहुत उपयोगी है।

एक पांच फीट दस इंच लम्बा २५ वर्ष का युवक अपने ४० किलो वज़न को किसी भी तरह बढ़ाना चाहता था—वह खूब खाता और तरह-तरह के टॉनिक लेता कि उसका वज़न बढ़ जाये। वह कन्याकुमारी आया और उसने योग के माध्यम से अपनी समस्या का समाधान चाहा। उसने बताया कि वह दिन में पांच बार खाता है और हर रोज़ लगभग ५००० केलोरी ले लेता है। जब उसका परीक्षण किया गया तो पता लगा कि उसका बायां नासाछिद्र लगभग निष्क्रिय है और उसकी श्वसन दर हर मिनट में ३४ है। अब जो उसे करना था, वह कुल मिलाकर इतना था कि वह अपना खानपान कम करे, अपना बायां नासाछिद्र खोले और अपनी श्वास को अत्यन्त मन्थर करता चला जाये। वह चन्द्रानुलोम विलोम प्राणायाम तथा अन्य योग अभ्यास से कुछ ही महीनों में ६५ किलो वज़न तक पहुंच गया।

एक प्रमुख महिला वकील जो कद में पांच फीट से भी कम थीं और जिनका वज़न

९५ किलोग्राम था, वज़न कम करने के लगभग सभी तरीके आजमा चुकी थीं, पर जैसे हर चीज़ बेअसर हो जाती थी। तब उन्होंने हमारी योग कक्षा में सूर्यानुलोम विलोम प्राणायाम, शवासन और एक घंटे के दूसरे आसनों का नियमित अभ्यास आरंभ किया। हर महीने उनका वज़न ४ से ५ किलो तक कम होता चला गया और एक वर्ष के अंदर ४६ किलो मात्र रह गया। जिन्होंने उन्हें एक साल बाद देखा तो सोचा शायद यह प्रसिद्ध वकील महिला की बेटी है। इस घटना को कई बरस हो गये हैं, पर उसने अपने वज़न को और तरुणाई को ज्यों का त्यों कायम रखा है।

चन्द्रानुलोम विलोम प्राणायाम वज़न बढ़ाने में मदद करता है और सूर्यानुलोम विलोम प्राणायाम मोटापा और वज़न घटाने में सहायक होता है। एक विशेष दूरी तक लाभ प्राप्त करने के लिए इन प्राणायामों का एक निश्चित कार्यक्रम दिया गया है, जिसमें नाश्ते से पहले सुबह, दोपहर तथा सायंकाल के भोजन से पहले और रात को सोने से पहले, इस प्रकार दिन में चार बार इन प्राणायामों के २७ चक्र करने की सलाह दी गयी है। इन प्राणायामों को विधिपूर्वक करने से बड़ी संख्या में दुबले और मोटे लोगों को फायदा हुआ है और उन्होंने सामान्य स्वास्थ्य-लाभ किया है।

आध्यात्मिक लाभ : चन्द्र और सूर्य नाड़ियों का शुद्धिकरण दो नाड़ियों के बीच संतुलन लाने के लिए पहला कदम है। इनसे चेतना के भीतरी सूक्ष्म धरातल खुलते चले जाते हैं और मनुष्य का विकास-क्रम गति पकड़ लेता है।

३. एकान्तर नासाछिद्र : इस क्रम में श्वसन-प्रश्वसन के तीन संयोजनों को देखा जा सकता है—(अ) बायें नासाछिद्र से श्वास लीजिए और दायें नासाछिद्र से छोड़िए—**चन्द्रभेदन**, (ब) दायें नासाछिद्र से सांस लीजिए और बायें से छोड़िए—**सूर्यभेदन** और (स) बायें से सांस लीजिए, दायें से छोड़िए, दायें से सांस लीजिए और बायें से छोड़िए—**नाड़ी शुद्धि**।

प्रणाली

(अ) चन्द्रभेदन

- वज्रासन या पद्मासन में आराम से बैठ जाइये, संभव न हो तो सुखासन में बैठिए। नासिका मुद्रा ग्रहण करें और दायें अंगूठे से दायें नासाछिद्र को बंद करें।
- मन्थरता के साथ बायें नासाछिद्र से श्वास लें, मृदुता से शान्त रूप से और पूरा श्वास लेने के बाद उसे पलटने का अवसर दें।
- केवल कुम्भक का आनंद लें।
- दायें नासाछिद्र से धीरे-धीरे श्वास छोड़ें और पूरी सांस छोड़ने के बाद श्वास के पलटने या परिवर्तन का अनुभव लें।
- केवल कुम्भक को देर तक बनाये रखें।

यह चन्द्र भेदन प्राणायाम का एक चक्र पूरा करता है। निर्देश के अनुसार चक्र-संख्या दोहराइये, जैसे ९ चक्र।

चन्द्रभेदन प्राणायाम

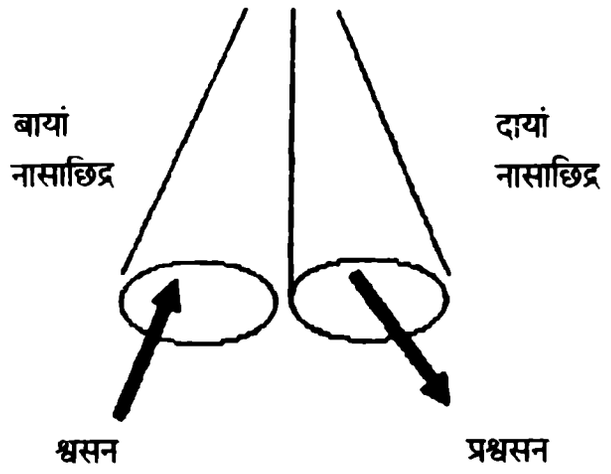

(ब) सूर्यभेदन

इस प्रणाली को **हठयोगप्रदीपिका** में कुम्भक के साथ इस प्रकार कहा गया है :

आसने सुखदे योगी बद्ध्वा चैवासनं ततः ।
दक्षनाड्या समाकृष्य बहिःस्थं पवनं शनैः ।।
आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुंभयेत् ।
ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत्पवनं शनैः ।।२.४८-४९।।

सुखद, स्थिर आसन ग्रहण करने के बाद योगी को दायें नासाछिद्र से धीरे-धीरे सांस लेना चाहिए, तबतक श्वास को रोककर रखना चाहिए जबतक कि वह केशों की जड़ों तक और नाखूनों के अग्रभाग तक प्रसृत न हो जाये। इसके बाद धीरे-धीरे बायें नासाछिद्र से श्वास छोड़नी चाहिए।

यह चन्द्रभेदन प्राणायाम से ठीक विपरीत प्रणाली है।

सूर्यभेदन प्राणायाम

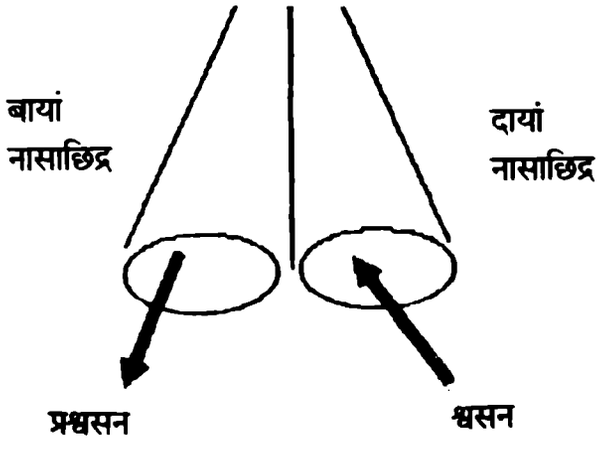

चन्द्रभेद या सूर्यभेद में जो **भेद** शब्द है उसका अर्थ है रहस्य, विवेक या छेदन-भेदन। इस प्रणाली में **सूर्यभेद** पिंगला नाड़ी का बेधन करता है और इस नाड़ी में प्राणशक्ति को सक्रिय बनाता है।

(स) नाड़ी शुद्धि

प्राणायाम के अभ्यासों में **नाड़ी शुद्धि** को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि यह प्रणाली प्राणायाम के समानार्थक हो गयी है। इसे **हठयोगप्रदीपिका** में प्राणायाम की पहली प्रणाली के रूप में स्वीकार किया गया है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार है :

बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत्।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत् ॥२.७॥
प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः।
विधिवत्कुंभकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥२.८॥

योगाभ्यास करनेवाले को पद्मासन में बैठकर बायें नासाछिद्र से सांस लेनी चाहिए और तब सामर्थ्य के अनुसार उसे रोक कर, दायें नासाछिद्र से छोड़नी चाहिए। इसके बाद दायें नासाछिद्र से श्वास लेकर धीरे-धीरे उदर को वायु से भर लेना चाहिए और तब पूर्ववत् श्वास-रोध करके उसे बायें नासाछिद्र से छोड़नी चाहिए।

नाड़ीशुद्धि प्राणायाम

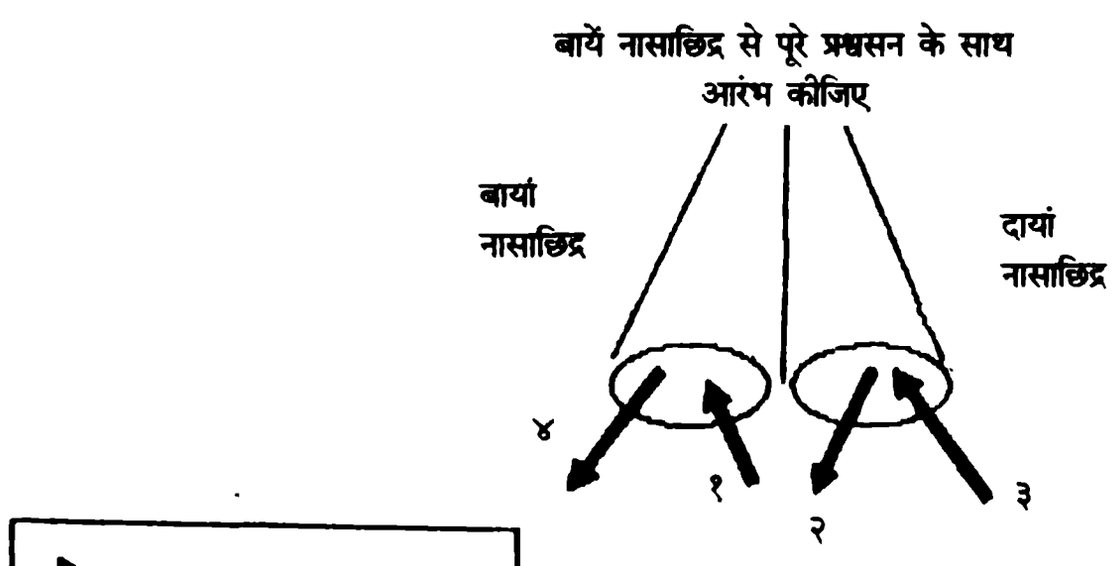

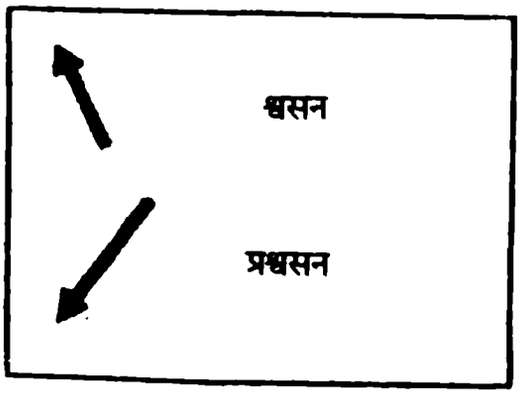

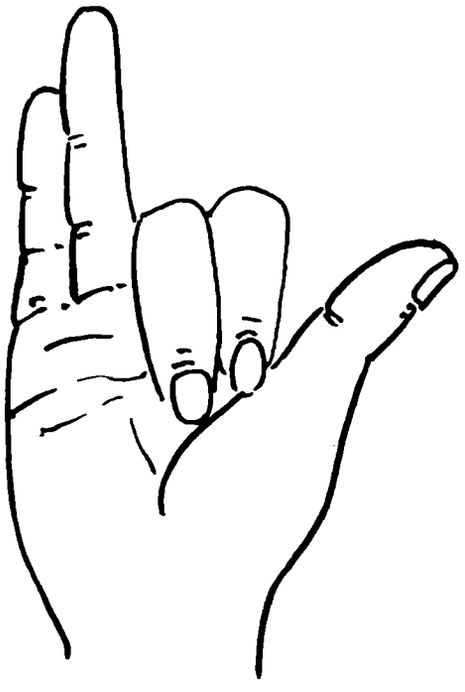

नासिका मुद्रा

प्रणाली

- वज्रासन या पद्मासन में बैठिए।
- नासिका मुद्रा द्वारा दायें अंगूठे से दायें नासाछिद्र को बंद कर बायें नासाछिद्र से श्वास लीजिए।
- श्वास के पलटाव का आनन्द लीजिए और केवल कुम्भक की अवधि को लम्बा कीजिए।
- दायां नासाछिद्र खोलिए और बायां नासाछिद्र अनामिका एवं कनिष्ठिका उंगली से बंद कर दायें नासाछिद्र से धीरे-धीरे सांस छोड़िये।
- श्वास के पलटाव एवं केवल कुम्भक का आनन्द लीजिए।
- दायें नासाछिद्र से धीरे-धीरे सांस लीजिए।
- केवल कुम्भक का प्रवर्धन करें।
- बायां नासाछिद्र खोलें और दायें अंगूठे से दायां नासाछिद्र बंद कर बायें से सांस छोड़ें।
- केवल कुम्भक को बढ़ायें और उसका आनन्द लें।

यह प्रक्रिया **नाड़ी शुद्धि** का एक चक्र पूरा करती है। चक्रों की निर्देशित संख्या (९ चक्र) पूरी करें।

लाभ

शारीरिक : ये तीनों प्राणायाम नासा पथ को स्वच्छ करने के अतिरिक्त दोनों नासाछिद्रों के बीच बड़े प्रभावोत्पादक रूप से सन्तुलन स्थापित करते हैं। अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र और परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र और उपचयी एवं अपचयी प्रक्रियाओं के बीच सन्तुलन विकसित हो जाता है और समस्थैतिकता पुनः प्राप्त हो जाती है। दूसरे सब प्राणायामों की भांति ही इस प्राणायाम के द्वारा भी उपापचयी दर घट जाती है।

चिकित्सीय : श्वसनी दमा, नासा प्रत्यूर्जता, श्वसनीशोथ और श्वास सम्बन्धी अनेक दूसरी समस्याओं में इस अभ्यास से सहायता मिलती है। उत्कंठा, व्यग्रता, दबाव में कमी आ जाने से चिकित्सीय लाभ विशेष रूप से दिखाई देने लगते हैं। उच्च रक्त चाप के मरीज़ों को चन्द्रभेदन और नाड़ीशुद्धि पर केन्द्रित होना चाहिए तथा पुराने जुकाम आदि के रोगियों को सूर्यभेदन प्राणायाम करना चाहिए।

आध्यात्मिक: प्राणमय कोश में प्राण का सन्तुलन आध्यात्मिक प्रगति के लिए बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। ये प्राणायाम उच्चतर जीवन और आध्यात्मिक विकास के लिए उपक्रम या तैयारी का काम करते हैं और बड़े व्यापक रूप से इनका प्रयोग किया जाता है। एकाग्रता, मन की प्राजंलता और स्पष्टता, स्मृति, बुद्धि-लब्धि और सृजनात्मकता को इन प्राणायामों से बढ़ावा मिलता है। **सूर्यभेदन** विशेष रूप से बुद्धि-लब्धि अर्थात् बायें मस्तिष्क के लिए और **चन्द्रभेदन** सृजनात्मकता, अन्तःबोध और दृष्टि, विशेष रूप से दायें मस्तिष्क के लिए और **नाड़ी शुद्धि** शेष या संपूर्ण तंत्र के लिए मान्य है। इन तीनों प्राणायामों के ये लाभ सभी के द्वारा स्वीकृत हैं और सुविदित हैं।

इस देश के महान् योगी और आध्यात्मिक गुरुओं ने सन्तुलन प्रदान करनेवाले इन प्राणायामों का महत्त्व समझा था और नाड़ी शुद्धि प्राणायाम का निर्देश सभी के लिए (छह माह तक) किया था। प्रतिदिन दो बार आधे या एक घंटे तक इस प्राणायाम को करने से छह महीने के अन्दर एक ऐसा सुदृढ़ आधार बन सकता है जो यौगिक जीवन और आध्यात्मिक अधिरचना के लिए उपयुक्त और अनुकूल है। **हठयोग प्रदीपिका** ॥३.१०॥ में तीन महीने के विधिपूर्वक अभ्यास से नाड़ीशुद्धि का उल्लेख है। पर यह दिन में चार बार अधिक अवधि तक किये गये प्राणायाम से संभव है।

नाड़ीशुद्धि प्राणायाम के लाभों को ध्यान में रखकर हमने अपने सभी योगाभ्यासों के अनिवार्य अंग के रूप में इस प्राणायाम को शामिल किया है।

लोगों का जो एकतरफा या असन्तुलित विकास है, चन्द्र और सूर्यभेदन प्राणायामों के अभ्यास से एक समंजसपूर्ण और अनुकूल संतुलन बड़े सफल और सार्थक रूप से लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक कलाकार में सृजनात्मक क्षमता विकसित रहती है पर उसकी विश्लेषणात्मक क्षमता यदि परिपक्व नहीं है तो उसे सूर्यभेदन प्राणायाम के द्वारा प्रखर बनाया जा सकता है। वैसे ही एक बहुत अधिक विश्लेषक व्यक्ति में, जो दिन पर दिन शुष्क होता जा रहा है और जो अतिशयतापूर्ण बुद्धिकरण, असंगत तार्किकता और स्नायविक विक्षिप्तता तथा स्किज़ोफ्रीनिया तक जा सकता है, 'हृदय' गुण का विकास करने से सन्तुलन लाया जा सकता है। चन्द्रभेदन प्राणायाम का अभ्यास प्रेम,

स्नेह, अन्तःबोध, सृजनात्मकता का विकास करता है और इस तरह 'हृदय' पक्ष की गुणवत्ता में वृद्धि लाता है। इसी प्रकार यदि कोई बालक या व्यक्ति अतिशय विनम्र या वश्य स्वभाव का है तो उसे सूर्यभेदन प्राणायाम से और यदि कोई बालक या व्यक्ति विद्रोही और दुर्दम स्वभाव का है तो उसे चन्द्रभेदन प्राणायाम द्वारा सहज और सन्तुलित बनाया जा सकता है। इन प्राणायामों के साथ क्रमिक रूप से वमन और वस्त्र धौति को संयुक्त कर सकते हैं। इस तरह इन प्राणायामों से व्यक्ति में अनुकूल और इच्छित परिवर्तनों की बहुत बड़ी संभावना है। नाड़ी शुद्धि प्राणायाम का नियमित विधिपूर्वक अभ्यास समता और सन्तुलन की कुंजी है जो आध्यात्मिक विकास का महाद्वार है।

यह स्मरणीय है कि सभी प्राणायामों के अभ्यास में **अभिज्ञा** रखना अत्यन्त आवश्यक है। प्राणायामों को करते समय अभिज्ञा को अवश्य बनाये रखना चाहिए और उसे क्रमशः सूक्ष्मतर स्तरों तक ले जाना चाहिए। सन्तुलन प्रदान करनेवाले इन प्राणायामों के सन्तोलक पक्ष के साथ अभिज्ञा का संयोजन आवश्यक है।

इस प्रकार इन पृष्ठों में प्राणायाम के इन तीन मूल तथ्यों की जानकारी हम प्राप्त कर चुके हैं :

१. **श्वास की मन्थरता।**
२. **श्वास की अभिज्ञा।**
३. **श्वास का सन्तुलन।**

अध्याय ८

अभिज्ञा का विस्तार

प्राणायाम के तीन मूल तथ्य—**श्वास की मन्थरता, श्वास की अभिज्ञा** और **श्वास का सन्तुलन**—योगी के लिए एक सुन्दर सुदृढ़ आधार का निर्माण कर देते हैं। प्राणायाम के और अधिक सूक्ष्म एवं गहन पक्षों के अभ्यास के लिए इन दो तथ्यों का विकास अत्यन्त आवश्यक है :

१. **संवेदनशीलता की वृद्धि और**

२. **अभिज्ञा का विस्तार।**

ये दोनों बातें प्राणायाम में प्रगति की सूचक हैं। अभिज्ञा का आरंभ सावधानी या एकाग्रता के रूप में होता है अर्थात् श्वसन पर ध्यान केन्द्रित करना। प्राणायाम की आरम्भिक स्थितियों में इससे शीघ्र प्रगति होती है। सावधानी या जागरूकता ही वह तथ्य है जो किसी भी अभ्यास की पूरी प्रक्रिया को मशीनी होने से बचाता है।

गति-रोध एक सामान्य बात है—न केवल सारे प्राणायामों में, बल्कि सभी योग-अभ्यासों में। ऐसा क्यों होता है, इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि हमारा शारीरिक तंत्र इसी प्रकार बना हुआ है। इसे हम इस प्रकार समझेंगे।

आरंभ में, हम किसी भी प्रणाली को सीखते समय उसपर पूरा ध्यान देते हैं और सजग रहते हैं। इससे मस्तिष्क का वल्कुट क्षेत्र या नव-वल्कुट, अर्थात् हमारा चेतन मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है। यह मस्तिष्क का वह भाग है जो मनुष्य के मस्तिष्क को बन्दरों या दूसरे पशुओं के मस्तिष्क से विशेषता प्रदान करता है। सारी सचेतन क्रियाएं नव-वल्कुट से संचालित होती हैं। यह नव-वल्कुट ही है जो संपूर्ण प्रक्रिया को योजनाबद्ध करता है और उसे निम्नवर्ती मस्तिष्क के हवाले कर देता है। यह निम्नवर्ती मस्तिष्क नव-वल्कुट को सम्मिलित किये बगैर इस प्रक्रिया को लगातार दोहराता चला जाता है। इसीको प्रक्रिया का मशीनी या यान्त्रिक हो जाना कहा जाता है। इसे प्रक्रिया का 'स्वचलीकरण' या स्वचलन भी कहते हैं। इससे हम समझ सकते हैं कि हमारा चेतन मस्तिष्क किस प्रकार रोज़मर्रा के घिसेपिटे अनेक नगण्य कार्यव्यापार—चलना, आना-जाना, साइकिल सवारी या खाना-पीना—आदि से असंयुक्त और अलग बना रहता है और इस प्रकार जीवन के अनेक काम यंत्रवत् होते रहते हैं।

योग उपाय है। वह एक चेतन प्रक्रिया होने के कारण इस यांत्रिकता या स्वचलन को भंग करता है। वह इस यांत्रिकता की शृंखला को एवं लगातार चल रहे इसके पोषण और सम्भरण के चक्र को तोड़ता है। योग की इसी चेतन शक्ति को विकसित करने के लिए अभिज्ञा को योग की सभी प्रणालियों में एवं प्राणायाम में इतना महत्त्व दिया गया है।

अभिज्ञा में प्रवेश पाने के लिए **अवधानता** या **सावधानी** (ध्यान केन्द्रित करना) पहला कदम है।

अभिज्ञा का विस्तार

बिन्दु अभिज्ञा से . . .

त्रि-विमीय और सर्वव्यापी अभिज्ञा तक

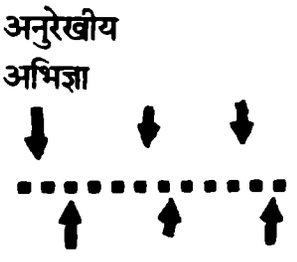

सतही अभिज्ञा

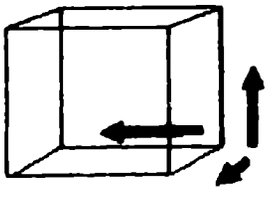
त्रि-विमीय
अभिज्ञा

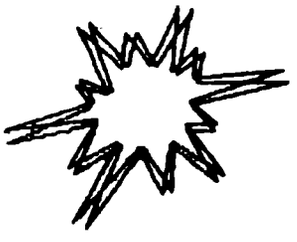
सर्वव्यापी
अभिज्ञा

संवेदनशीलता के विकसित होने पर ही अवधानता या अभिज्ञा का निर्माण हो सकता है। संवेदनशीलता रजस् का ही एक रूप है, इसके आह्वान् के लिए आवश्यक है कि तमस् को छिन्न-भिन्न कर दिया जाये। आधुनिक युग में सुखभोग के लिए बढ़ती हुई कामनाओं ने रजस् को बढ़ाया है। इसमें सन्देह नहीं कि आकर्षणों और इन्द्रिय सुख-भोगों के इस युग में हम संवेदनशील और बहुत सक्रिय हो गये हैं। संवेदनशीलता और बुद्धि की प्रखरता के कारण अपने चारों ओर के भौतिक जगत् के बारे में हमारी समझ बढ़ी है और हम प्रौद्योगिकी के इस अतिविकसित युग तक आ पहुंचे हैं। पर अब यह बढ़ी हुई संवेदनशीलता अतिसंवेदनशीलता में बदलती जा रही है—इससे जुड़े हुए संकटों के बारे में हम पहले अध्याय में चर्चा कर चुके हैं।

यही खतरा यहां भी है। यदि हम **कपालभाति** के द्वारा संवेदनशीलता का आह्वान करें और सारे प्राणायामों में केवल 'सावधानता' का उपयोग करें, तो ठीक ऐसा ही संकट उपस्थित हो सकता है। संवेदनशीलता का एकतरफा या असंतुलित विकास एक साधक के जीवन में भी अतिसंवेदनशीलता के संकट पैदा कर सकता है—जैसे क्षोभ, क्रोध, अतिशय भूख-प्यास और यौनसम्बन्धों में स्वच्छन्दता। इसलिए **संवेदनशीलता का विकास** और **अभिज्ञा का विस्तार**, इन दोनों का एक साथ रहना ज़रूरी है। अभिज्ञा के विस्तार से अतिसंवेदनशीलता का संकट नहीं रहता और संवेदनशीलता के विकास से अभिज्ञा का निर्माण होता है।

सावधानता अभिज्ञा का प्रथम चरण है—इसका अर्थ है **बिन्दु अभिज्ञा**। इसके बाद **अनुरेखीय अभिज्ञा, सतही या बाह्य अभिज्ञा** और तब **त्रि-विमीय** अभिज्ञा का विकास होता है।

अभिज्ञा के विस्तार में शीतलीकरण प्राणायामों को प्रस्तुत करने से पहले हम उज्जायी प्राणायाम के बारे में बतायेंगे, जो अभिज्ञा के प्रथम चरण सावधानता को विशेष रूप से प्रकट करता है। उज्जायी प्राणायाम में कंठ पर सावधानता या ध्यान का केन्द्रीकरण नव-वल्कुट या चेतन मस्तिष्क को क्रियाशील करता है और इस प्रकार अभ्यास करनेवाले साधक या योगी को जीवन की यांत्रिकता से मुक्त करता है।

उज्जायी प्राणायाम

संस्कृत में **उज्जायी** का अर्थ है विजयी—'उज्जी' अर्थात् जीतना। इसमें कंठच्छद के कुछ बंद हो जाने के कारण श्वसन नली सिकुड़ जाती है और उसमें वायु का प्रवाह सतह का स्पर्श करने के कारण ध्वनि के साथ बाहर आता है।

हठयोग प्रदीपिका में इस प्राणायाम को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :

मुखं संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः ।
यथा लगति कंठात्तु हृदयावधि सस्वनम् ।।
पूर्ववत्कुंभयेत्प्राणं रेचयेदिडया तथा ।।२.५१-५२।।

मुख बंद करके इडा-पिंगला दोनों नाड़ियों से अर्थात् दोनों नासाछिद्रों से धीरे-धीरे इस प्रकार सांस लीजिए कि उसे सुन्दर ध्वनि के साथ गले से हृदय (फेफड़ों) तक अनुभव किया जा सके, तब कुम्भक द्वारा श्वास रोककर इसे इड़ा नाड़ी अर्थात् बायें नासाछिद्र से बाहर छोड़ दीजिए।

उज्जायी प्राणायाम इतना सरल है कि इसे चलते, बैठते, खड़े कभी भी किया जा सकता है।

प्रणाली

- किसी भी आसन या स्थिति में सुखपूर्वक बैठ जाइये। यदि पद्मासन या वज्रासन में बैठ सकें तो अधिक अच्छा है।
- शरीर को शिथिल विश्राम-स्थिति में रखें। चेहरे पर प्रसन्नता हो।
- घंटी के आंशिक संकुचन से गले से घर्षण ध्वनि निकालते हुए धीरे-धीरे श्वास लीजिए। यह ध्वनि इस तरह की होती है जैसे पानी किसी नली के अन्दर बह रहा हो। इसे निगलने के कार्य की नकल करके सीखा जा सकता है, पर पूरी तरह नहीं। यह मन्थरता से श्वास को अन्दर आने में मदद करता है।
- पूर्ण श्वास लेने के बाद श्वास को आराम से रुक जाने दीजिए और प्रश्वसन (श्वास छोड़ना) आरंभ करने से पहले विश्राम लीजिए। इस सन्धि स्थल पर **केवल कुम्भक** को प्रभावशाली रूप से अनुभव किया जा सकता है। विश्रान्ति के साथ इस स्थिति का आनन्द लें। इससे केवल कुम्भक की दीर्घता में सहायता मिलेगी।
- नासिका मुद्रा ग्रहण करके अंगूठे से दायें नासा छिद्र को बंद करके बायें नासाछिद्र से धीरे-धीरे श्वास छोड़िए। प्रश्वसन को उतना लम्बा कीजिए जितना आराम से संभव हो। घर्षण ध्वनि का आनन्द लीजिए।
- प्रश्वसन पूरा हो जाने से, श्वसन से पहले सांस स्वयं ही रुक जाती है। आनन्द और विश्रान्ति के साथ इस **केवल कुम्भक** का प्रवर्धन कीजिए।

यह **उज्जायी प्राणायाम** का एक चक्र है। ऐसे नौ चक्रों तक अपना अभ्यास जारी रखिए।

लाभ

शारीरिक : प्राणायाम के सभी सामान्य लाभों के **अतिरिक्त** यह कंठ से कफ दोष को मिटाता है और जठराग्नि को उद्दीप्त करता है। इससे नाड़ी और धातुदोष भी दूर होते हैं। यह कंठच्छद की मांसपेशियों को मज़बूत करता है, जिससे खर्राटों की समस्या कम हो जाती है। आवाज़ भी साफ और शुद्ध हो जाती है।

चिकित्सीय : उज्जायी प्राणायाम से गलतुण्डिका, गला खराब, पुरानी सर्दी और श्वसनी दमा को बहुत आराम मिलता है। इससे अतिसंवेदनशील गला, खांसी एवं हिचकी आदि में भी मदद मिलती है। चिन्तित रहनेवाले रोगी यदि इस प्राणायाम को करें तो उनका चिंता-स्तर कम होता चला जायेगा।

आध्यात्मिक : कंठ **विशुद्धि चक्र** का स्थान है। इस जगह ध्यान का केन्द्रीकरण और जागरूकता आध्यात्मिक विकास का आरम्भ है।

उज्जायी एक आधारभूत प्राणायाम है और अन्य अनेक प्राणायामों के साथ इसका उपयोग किया जा सकता है।

शीतलीकरण प्राणायामों के द्वारा अभिज्ञा का विस्तार कैसे हो सकता है, वह नीचे प्रस्तुत है।

शीतलीकरण प्राणायाम

इस क्रम में तीन प्रकार के प्राणायामों का प्रयोग होता है :

१. **शीतली**
२. **सीत्कारी**
३. **सदन्त**

इन प्राणायामों में हम **तापमान** को अपना उपकरण बनाते हैं और इसके द्वारा वायु के प्रवाह को पहचानते हैं। यह अभिज्ञान हमारी अभिज्ञा का विस्तार और संवेदनशीलता की वृद्धि करता है।

१. **शीतली** (चंचु-जिह्वा प्राणायाम)

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत्कुंभसाधनम्।
शनकैर्घ्राणरंध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधीः ।।हठयोग प्र० २.५७।।

प्राणायाम के अभ्यासी लोगों को जिह्वा (चंचु) से श्वास लेकर फिर पहले बतायी गयी विधि से कुम्भक करके नासाछिद्रों से धीरे-धीरे श्वास छोड़नी चाहिए।

प्रणाली

- स्थिति ग्रहण कीजिए।
- मुख से बाहर जिह्वा को निकाल कर उसे काग की चोंच की तरह मोड़ लीजिए।
- चोंच के द्वारा धीरे-धीरे हवा को खींचिए और ठंडी हवा के प्रवाह को श्वसन नली से फेफड़ों में जाता हुआ अनुभव कीजिए।
- पलटाव और केवल कुम्भक का आनन्द लीजिए।
- नासाछिद्रों से धीरे-धीरे श्वास छोड़ें, फेफड़ों से श्वसन नली में और नासा मार्गों से ऊपर आती हुई गर्म हवा के संचलन को ध्यानपूर्वक महसूस करें।
- श्वास-रोध का आनन्द लें और जिह्वा-चंचु से पुनः श्वास लेने से पहले सुखद **केवल कुम्भक** का वर्धन करें।

यह प्रक्रिया **शीतली प्राणायाम** का एक चक्र पूरा करती है। ऐसे पांच चक्र पूरे कीजिए।

२. **सीत्कारी प्राणायाम** (सीत् ध्वनि प्राणायाम)

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रेघ्राणेनैव विजृंभिकाम्।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ॥२.५४॥

सीत्कार ध्वनि करते हुए मुख से श्वास लीजिए और नासाछिद्रों से छोड़िए। इसमें मुख को फैलाना नहीं चाहिए। इस प्राणायाम के अभ्यास से मनुष्य में आकर्षण बढ़ता है।

प्रणाली

- स्थिति ग्रहण कीजिए।
- जिह्वा का अग्रभाग अन्दर लेकर उसे ऊपरी दांतों के साथ तालु से टिका लीजिए। जिह्वा का थोड़ा-सा अग्रांश बाहर आ जाता है और दोनों तरफ के भाग किंचित् खुले रहते हैं।
- धीरे-धीरे श्वास खींचिए। दोनों तरफ के खुलावों से हवा अन्दर जाकर मुख में फैल जाती है और श्वसन-नली से होती हुई फेफड़ों में उतर जाती है।
- केवल कुम्भक का प्रवर्धन कीजिए और इसके प्रभावों को अनुभव कीजिए।
- गर्म हवा फेफड़ों से श्वसन-नली, नासा मार्गों से होती हुई नासाछिद्रों से बाहर निकल जाती है।
- श्वास स्वतः ही रुक जाती है। शीतलीकरण के कारण कुम्भक दीर्घ हो जाता है और गहरे विश्राम की अनुभूति होती है।

यह प्रक्रिया सीत्कारी का एक चक्र पूरा करती है। ऐसे पांच चक्र कीजिए।

३. **सदन्त प्राणायाम** (ज़ोर से बंद दांतों का प्राणायाम)

दांतों के उपयोग से किया जानेवाला यह प्राणायाम **सदन्त** कहलाता है : **दन्तेन सह इति सदन्तः**।

इस प्राणायाम में दांत भिंचे रहते हैं। जिह्वा का अग्रभाग दांतों के पीछे रखा जाता है और हवा अन्दर खींची जाती है। हवा मसूड़ों का स्पर्श करती हुई दांतों की दरारों के बीच से मुख में चली जाती है और श्वसन-नली से होती हुई फेफड़ों में उतर जाती है। इस अभ्यास के शेष पक्ष शीतली और सीत्कारी प्राणायाम की तरह हैं।

विभेदी वाष्पीकरण का सिद्धान्त

हम मिट्टी के घड़े में ठंडे पानी के उदाहरण को ले सकते हैं। जल के कण घड़े के छिद्रों से बाहर निकल आते हैं और घड़े की बाहरी सतह पर उनका वाष्पीकरण हो जाता

है। वाष्पीकरण के लिए अंतर्निहित ताप पानी से घड़े में चला जाता है और इसीलिए पानी का तापमान कम हो जाता है।

इसी प्रकार, जब हवा जिह्वा की सतह पर प्रवाहित होती है, तब जिह्वा पर मौजूद लार उसका वाष्पीकरण कर देती है और जिह्वा पर ताप के संवेदक शीतलता के प्रभाव को दर्ज कर लेते हैं। श्वसन नली आदि की अन्तर-सतहों में शीतलता श्लेष्मीय स्रावों के वाष्पीकरण के कारण होती है।

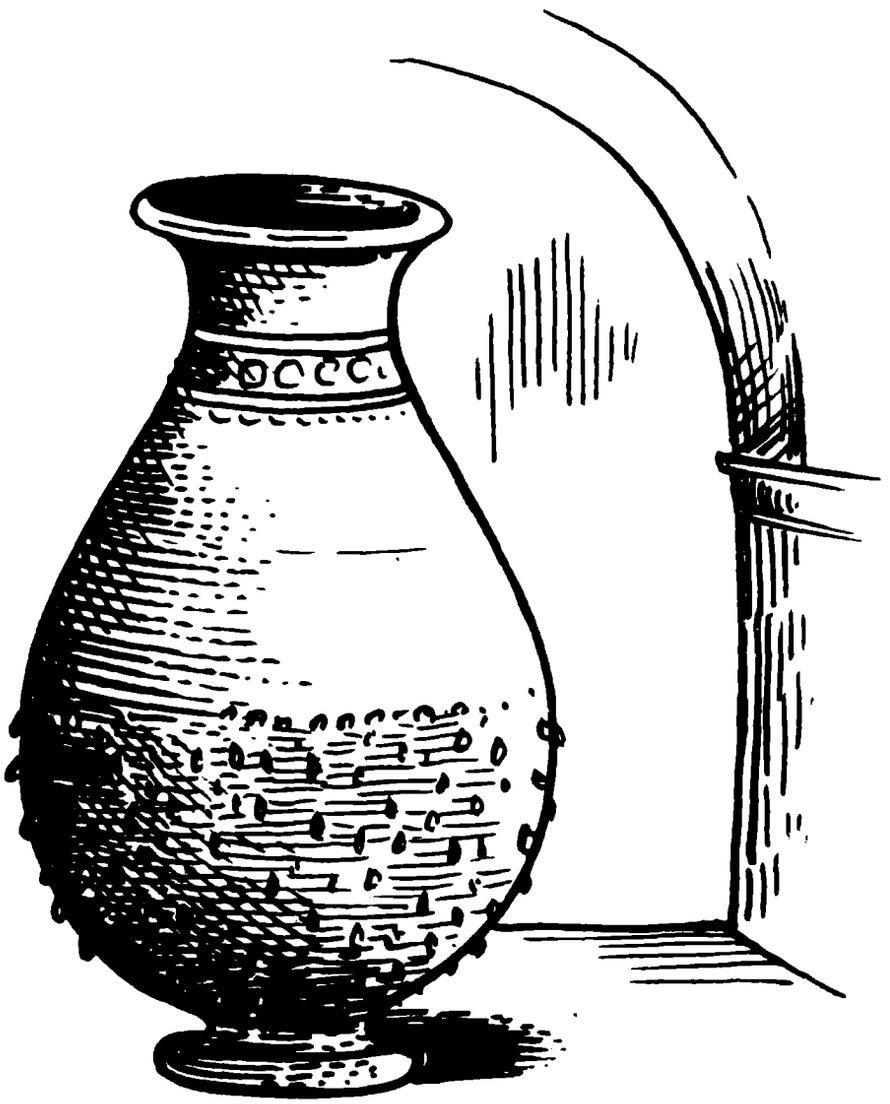

तीनों प्राणायामों में शीतलीकरण का सिद्धान्त

जब हवा फेफड़ों में प्रवेश करती है, तब वह शरीर का तापमान प्राप्त कर लेती है। प्रश्वसन अथवा सांस छोड़ते समय यह गर्म हुई हवा ऊपर की ओर जाती है और इसलिए अनुभव में आती है क्योंकि सतह पहले ठंडी हो चुकी होती है।

तापांतर हवा के संचरण को पहचानने में मदद करता है और इस प्रकार अभिज्ञा का निर्माण और उसका अनुरेखीय अभिज्ञा से सतही अभिज्ञा तक विस्तार करता है।

वायु का प्रवाह

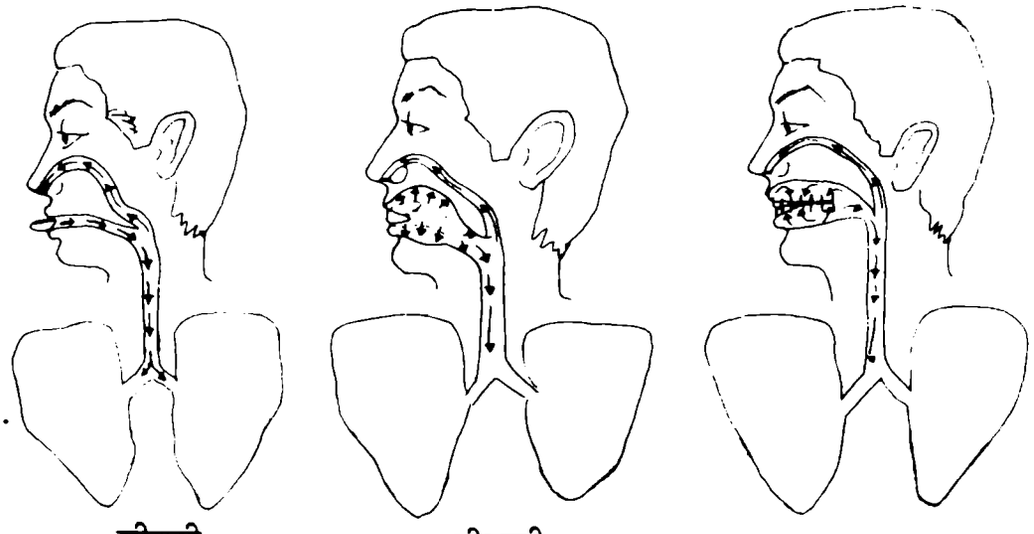

शीतली सीत्कारी सदन्त

तीन प्राणायामों में वायु का प्रवाह

प्रस्तुत अनुरेखीय चित्र में आप देखेंगे कि तीनों प्राणायामों में वायु का प्रवाह मुख के अन्दर और नीचे श्वास नली में जाता है।

शीतली प्राणायाम में हवा जिह्वा-चंचु के बीच से प्रवाह की तरह धीरे-धीरे श्वास नली और फेफड़ों में जाती है। जिह्वा के अग्रभाग से लेकर फेफड़ों तक पूरे रास्ते हवा के संचरण के कारण शीतलता का अनुभव होता है। फेफड़ों से आती हुई गर्म हवा को भी पूरे रास्ते एवं नासाछिद्रों से निकलते हुए महसूस किया जा सकता है। उज्जायी प्राणायाम में अभिज्ञा का अनुभव (बिन्दु अभिज्ञा) केवल कंठ तक सीमित रहता है, पर इन प्राणायामों में यह अभिज्ञा जिह्वा, श्वास नली और इस प्रकार पूरे श्वसन पथ पर प्रसरित हो जाती है। शीतलता और उष्णता (तापांतर पक्ष) इस अभिज्ञा के लिए उत्तरदायी हैं। इसलिए जब हम उज्जायी से शीतली में आते हैं तब अभिज्ञा के विस्तार में पहला चरण यह है कि हम बिन्दु अभिज्ञा से अनुरेखीय अभिज्ञा में जाते हैं।

हम अगले चरण में अनुरेखीय से सतही अभिज्ञा की ओर जाते हैं। इसका आरंभ सीत्कारी में होता है।

सीत्कारी प्राणायाम में, जब हवा जिह्वा के खुलावों के पार्श्व भागों से अन्दर प्रवेश करती है, तब वह प्रवाह की तरह नहीं, बल्कि मुख के अन्दर की सारी सतहों का स्पर्श करती हुई जिह्वा की सतह पर अन्दर संचरण करती है। इस शीतल हवा का मृदु प्रसरित संचरण और सुन्दर शीतल स्पर्श मुख की अन्तर सतहों पर हर बिन्दु पर अनुभव करना **सतही अभिज्ञा** है।

सदन्त प्राणायाम में हम अधिक संवेदनशील हो जाते हैं और संपूर्ण श्वसन-पथ—मुख, श्वास-नली, श्वसनी और फेफड़े, ऊपरी नासा पथ आदि—को सम्मिलित

करते हैं। जब हम हवा को अन्तर सतह पर मृदुता से घर्षित होने देते हैं, तब पूरे श्वसन-पथ पर सतही अभिज्ञा निर्मित हो जाती है।

अभिज्ञा का विस्तार समता और संतुलन, आनन्द और उल्लास का परिचायक है। गहरी विश्रान्ति के कारण उपापचयी दर घट जाती है और केवल कुम्भक की दीर्घता बड़े सार्थक रूप से बढ़ जाती है।

लाभ

शारीरिक : ये तीनों प्राणायाम मांसपेशियों को शिथिल करते हैं, तंत्रिका तंत्र को आराम पहुंचाते हैं और यहांतक कि आधारी उपापचयी दर को बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से घटा देते हैं। एक समग्र शीतलीकरण प्रभाव को सर्वत्र देखा जा सकता है। इन प्राणायामों को करने के बाद हल्कापन, स्फूर्ति और ताज़गी का अनुभव होता है। विशेष रूप से स्वाद कलिकाएं और मुख सुग्राही-संवेदनशील हो जाते हैं और फेफड़ों की जीवनशक्ति बढ़ जाती है।

चिकित्सीय : सर्दी से होनेवाली प्रत्यूर्जताओं को इन प्राणायामों के लम्बे अभ्यास से बड़े प्रभावी रूप में नियंत्रित किया जा सकता है। चिन्ता स्नायुरोगियों को इनके अभ्यास से बहुत अधिक लाभ मिला है। दबावों और तनावों को कम करने में ये प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह करते हैं। सदन्त प्राणायाम मसूड़ों और दांतों की अनेक समस्याओं को दूर करता है और दन्त क्षय, दांत दर्द, पायरिया आदि में काम आता है। अतितनाव में सदन्त अत्यन्त उपयोगी है।

आध्यात्मिक : अभिज्ञा का विस्तार आध्यात्मिक विकास का ही एक पक्ष है। यह बड़े क्रमबद्ध रूप से बिन्दु से अनुरेखीय और तब सतही अभिज्ञा की ओर अग्रसर होता है। इसके द्वारा वे चीज़ें पकड़ में आने लगती हैं जो अभीतक अदृश्य और अग्राह्य थीं। इससे बोधशक्ति सूक्ष्म और विस्तृत हो जाती है। चेतना के अप्रत्यक्ष आयाम अभिज्ञा के विकास के साथ खुलने और प्रकट होने लगते हैं।

प्रतिबन्ध

सर्दी, गला खराब आदि की आरम्भिक स्थितियों में इन प्राणायामों का अभ्यास हालत को बदतर कर सकता है। श्वसनीशोथ के मरीज़ों को भी शुरू में इन प्राणायामों को न करने की सलाह दी जाती है।

मुख से श्वास क्यों ?

अक्सर यह प्रश्न सामने आया है कि इन अभ्यासों में मुख से श्वास लेने की प्रक्रिया कहांतक ठीक है, इसमें क्या औचित्य है ?

सामान्य श्वसन नासाछिद्रों के द्वारा ही किया जाना चाहिए क्योंकि नाक एक प्रभावशाली **वातानुकूलक** का काम करती है। जैसे वह

(१) धूल और दूसरे बाहरी कणों को हटाती है

(२) वायु तापमान को शरीर के तापमान तक ले आती है, और
(३) वायु की नमी का नियंत्रण करती है कि वह शरीर की नमी के साथ मेल खा सके।

जब श्वसन में नाक का उपयोग नहीं होता है, तब नियंत्रण के ये तीनों तथ्य अनुपस्थित रहते हैं। इसलिए नासाछिद्रों से श्वास लेना ही प्रशंसनीय माना जाता है और कोई भी चिकित्सक मुंह से सांस लेने की सलाह नहीं देता।

तब भी, इन प्राणायामों में, वायु का **शुद्धिकरण** तब हो जाता है जब हवा जिह्वा के द्वारा या दांतों की दरारों के द्वारा अन्दर जाती है। **नमीकरण** तब हो जाता है जब सूखी हवा मुंह के अन्दर जाकर लार स्रावों को सोख लेती है। जहांतक **तापमान** का सम्बन्ध है, हम अभिज्ञा के विकास के लिए जागरूक रूप से विभेद या तापांतरों का उपयोग करते हैं। इस तरह, वातानुकूलन सम्बन्धी तीनों पक्षों का इन प्राणायामों में ध्यान रखा जाता है।

इसके अलावा, इन प्राणायामों में पूरी श्वसन संख्या (तीनों प्राणायामों के लिए लगभग ३०) पूरे दिन में ली जानेवाली संपूर्ण श्वसन-संख्या की तुलना में इतनी कम है कि मुंह से श्वास लेना किसी भी रूप में हानिकारक नहीं हो सकता। जब कभी सर्दी जुकाम या नासा प्रत्यूर्जता के कारण नासाछिद्र बंद हो जाते हैं और बहुत समय तक मुंह से सांस लेनी पड़ती है, तब वह तंत्र को किसी भी तरह का नुकसान नहीं पहुंचाती।

शीतलीकरण प्राणायाम के अन्य प्रभेद

इन प्राणायामों में श्वसन अथवा सांस लेने की क्रिया तो जिह्वा या दांतों के द्वारा नियत है, पर प्रश्वसन या सांस छोड़ने में कुछ अन्तर किये जा सकते हैं, जैसे सांस को दोनों नासाछिद्रों से छोड़ा जाये, किसी एक नासाछिद्र से या एकान्तर नासाछिद्रों से छोड़ा जाये।

दायें नासाछिद्र से श्वास छोड़ने से शीतलीकरण प्राणायाम का प्रभाव अधिक होता है, जब कि बायें नासाछिद्र के द्वारा किया गया प्रश्वसन इसके प्रभावों को कम करता है। एक प्रश्वसन दायें नासाछिद्र से और एक बायें से संतुलन प्रदान करता है।

अध्याय ९

लय

हमने शीतलीकरण प्राणायाम में देखा कि किस प्रकार तापांतर के उपयोग से अभिज्ञा का विस्तार किया जा सकता है और बिन्दु अभिज्ञा से अनुरेखीय एवं तब सतही अभिज्ञा की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। इसके बाद आती है त्रि-विमीय अभिज्ञा और तब सर्वव्यापक अभिज्ञा। प्राणायाम की अधिक विकसित प्रणालियों के द्वारा अभिज्ञा के सर्व व्यापक बोध को प्राप्त किया जा सकता है। भ्रामरी और मूर्छा ऐसे ही प्राणायाम हैं जिनका विवरण हम इस अध्याय में प्रस्तुत कर रहे हैं। ये लय प्राणायाम हैं जो साधक या योगी को परा चैतन्य स्थिति में निमज्जित कर देते हैं। इन्हें विलयक प्राणायाम भी कह सकते हैं।

भ्रामरी

इस प्राणायाम में अभिज्ञा के और अधिक विकास के लिए ध्वनि-तरंगों का उपयोग किया जाता है।

संस्कृत में भ्रामरी का अर्थ है भ्रमरी की, भौंरी की या मधुमक्खी की—आवाज़ या ध्वनि इसमें अन्तर्निहित है। अर्थात् भ्रमरी की ध्वनि। यह प्राणायाम इस ध्वनि के साथ किया जाता है। हठयोगप्रदीपिका में इसका वर्णन इस प्रकार है :

वेगाद्घोषं पूरकं भृंगनादं भृंगीनादं रेचकं मंदमंदम्।
योगींद्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते जाता काचिदानंदलीला ॥२.६८॥

भ्रमर की ध्वनि के समान घोष करते हुए तेज़ी से सांस लीजिए और भ्रमरी के समान ध्वनि करते हुए उसे मंद-मंद छोड़िए। इस यौगिक अभ्यास से साधक महान् योगी बन जाता है और उसका चित्त आनन्द में लीन हो जाता है।

प्रणाली

- प्राणायाम के लिए स्थिति ग्रहण कीजिए।
- पूरा श्वास लीजिए।
- श्वास छोड़ते समय भ्रमरी की भांति गुंजन ध्वनि कीजिए। पूरे शरीर में ध्वनि-तरंगों के अनुभव को बाधा पहुंचाये बिना श्वास और ध्वनि को बिना किसी आयास के जितना अधिक संभव हो, दीर्घ कीजिए।
- श्वास रुकने पर केवल कुम्भक का और पूरे शरीर में अनुगुंजन करती ध्वनि-तरंगों का अनुभव कीजिए। मन की इस सुखद स्थिति का आनन्द लीजिए।
- जब श्वास अन्दर आना आरंभ करे तब श्वसन के समय उच्च नादयुक्त भ्रमर की

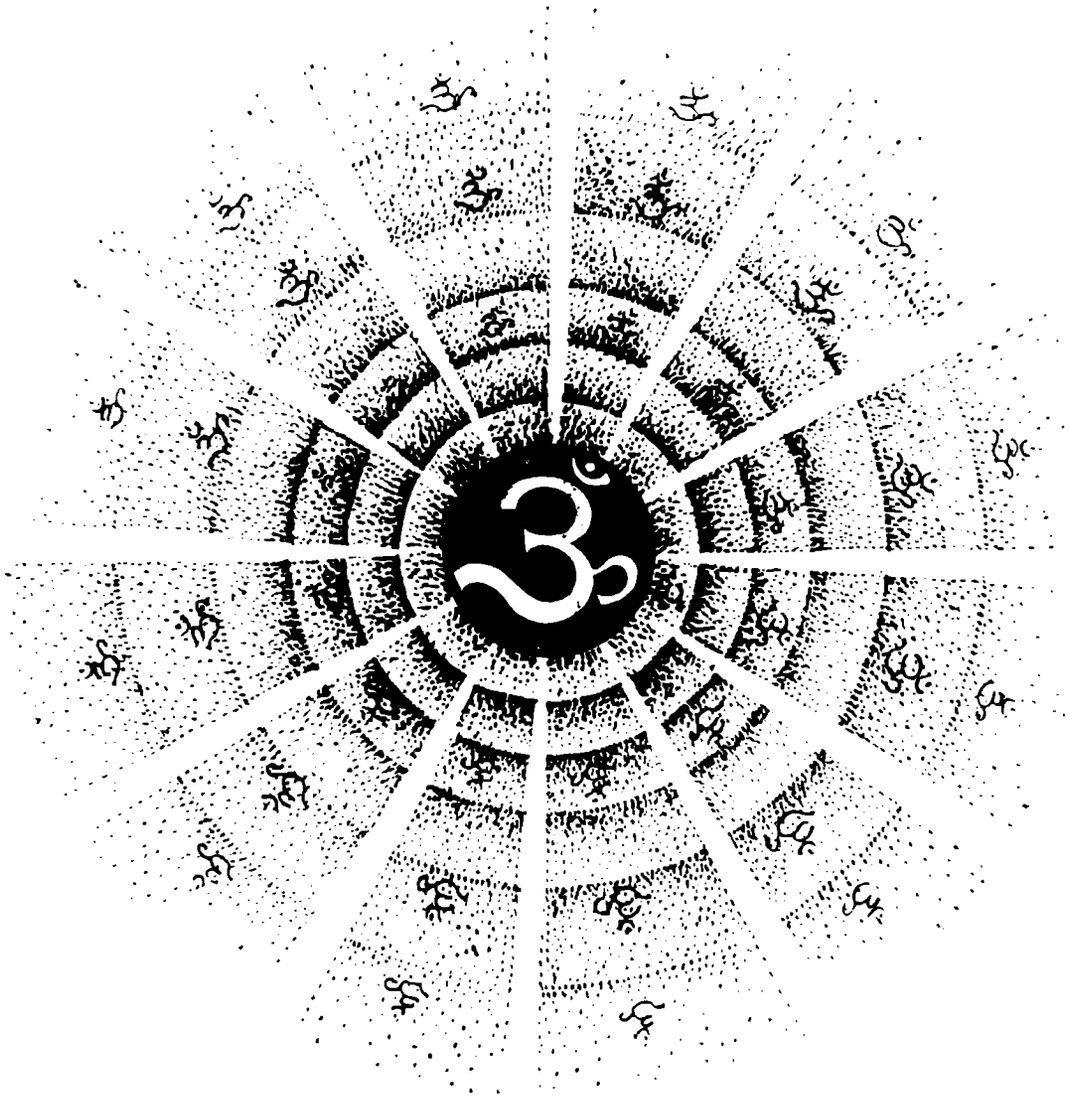

नाद-अनुनाद

ध्वनि उत्पन्न करें। इसे भ्रामर प्राणायाम भी कहा जाता है। करते समय पूरे शरीर में उच्च घोषयुक्त अनुनाद की अनुभूति होनी चाहिए।

- श्वास मंद होती हुई सहज ही रुक जाती है। उच्च नाद मंद्र कोमल होता हुआ बाहर तो रुक जाता है, लेकिन पूरे शरीर में **अनुनाद ध्वनि** तरंगित होती रहती है। केवल कुम्भक की इस स्थिति को यथासंभव दीर्घ करते हुए इसका आनन्द लीजिए।

अनुनाद—भ्रामरी का आधार

भ्रामरी प्राणायाम के अभ्यास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है श्वसन-प्रश्वसन दोनों में अनुनाद ध्वनि-तरंगों को उत्पन्न करना। अनुनाद की विलक्षणता को वैज्ञानिक रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में समझा गया था।

*सैनिकों का एक दल एक पुल पर से मार्चपास्ट करता हुआ गया, जैसे ही वह पुल के पार हुआ, उसने देखा कि पुल ढह गया। पुल के नष्ट हो जाने में तेज़ हवा या बाढ़ ऐसा कोई कारण सामने नहीं था। बाद में परीक्षण द्वारा यह पता लगा कि पुल पर **मार्च पास्ट** के प्रभाव के कारण पुल गिरा है।*

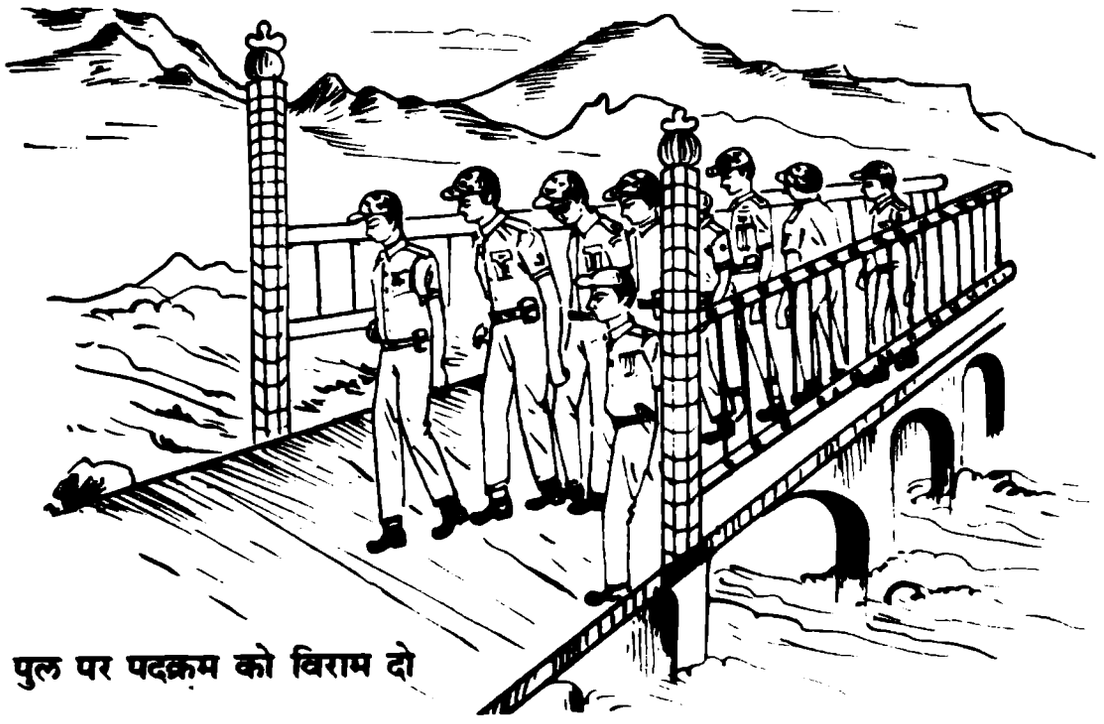

पुल पर पदक्रम को विराम दो

इस घटना से विज्ञान को एक नया तथ्य मिला, जिसे **अनुनाद** कहते हैं। जब दो या अधिक उद्गम कारणों से आवृत्तियों की अनुरूपता होती है या वे मेल खाती हैं, तब तरंगें एक दूसरे का अभिनन्दन करती हैं और उच्च आयाम तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। इस घटना में पुल की स्वाभाविक आवृत्ति कवायद की आवृत्ति के साथ मेल खा गयी, और पुल उच्च आयाम दोलनों के अधीन होकर ध्वस्त हो गया। इसी कारण से **'पुल पार करते समय पदक्रम को विराम दो'** नियम निषेधाज्ञा के रूप में सेनाओं में लागू कर दिया गया।

अनुनाद

तंत्रीयुक्त वाद्ययंत्र का जब सुर मिलाया जाता है, तब उससे उत्पन्न होनेवाला अनुनाद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है और अनुनाद की उपयोगिता को प्रकट करता है। जब वीणा या वायलिन या सितार को प्रभावोत्पादक रूप से सुस्वर किया जाता है, तब एक सिरे पर तार की झंकार सुन्दर अनुनाद को जन्म देती है और उसके कम्पनों को वाद्ययंत्र के हर हिस्से में अनुभूत किया जा सकता है।

भ्रामरी प्राणायाम में इसी तरह की सुहावनी सुस्वरता का अभ्यास किया जाता है। ऐसा तब हो सकता है जब श्वास-प्रश्वास के दौरान कंठ में उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति शरीर की स्वाभाविक आवृत्ति से मेल खाती है। कंठ से निकली हुई ध्वनि की आवृत्ति को हमें इस तरह से साधना होता है कि अनुनाद उत्पन्न हो सके। गुणात्मक रूप से, हमें नख-शिख तक पूरे शरीर में कम्पनों की अनुभूति होनी चाहिए। इसे त्रि-विमीय अभिज्ञा कहा जाता है—अभिज्ञा जो पूरे शरीर में विकसित हो चुकी है। यह नाद-अनुनाद या ध्वनि-अनुनाद है जो भ्रामरी में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आरंभ में, हमें केवल प्रश्वसन के दौरान अनुनाद के अभ्यास पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। बहुत से लोग केवल ध्वनि की दीर्घता का अभ्यास करते हैं और अनुनाद के पक्ष को पूरी तरह विस्मृत कर देते हैं। इससे त्रि-विमीय अभिज्ञा का विकास नहीं हो पाता और प्राणायाम का प्रभाव न्यूनतम रह जाता है। इसलिए, **भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास करते समय ध्वनि की दीर्घता का प्रयत्न करने की अपेक्षा अनुनाद के वैशिष्ट्य से संपन्न पूर्ण ध्वनि को निकालना अधिक महत्त्वपूर्ण है।** प्रश्वसन सम्बन्धी ध्वनि-अभ्यास को भली प्रकार सीखने के बाद हम श्वसन के दौरान ध्वनि-अनुनाद-अभ्यास आरंभ कर सकते हैं।

हम लोग प्रश्वसन के समय ही ध्वनि निकालने के आदी होते हैं, इसलिए श्वास लेते समय ध्वनि उत्पन्न करने का अभ्यास काफ़ी कठिन काम है। इसके लिए हमें घंटी, गले और नासा-विवरों को इस तरह कसना और सिकोड़ना होता है कि हवा वाक्-तंतु में प्रवेश करके वाक्-यंत्र को ध्वनि उत्पन्न करने के लिए बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से कम्पित कर सके। जैसा कि हम प्रश्वसन में करते हैं, अपनी इच्छानुसार आवृत्तियों में परिवर्तन कर सकते हैं और अभ्यास के द्वारा ध्वनि की उच्चता में वृद्धि कर सकते हैं। इतना हो जाने के बाद ही हम श्वसन के दौरान भी अनुनाद की स्थिति प्राप्त कर सकते हैं।

भ्रमरी एवं भ्रमर ध्वनियां

यह जानी-मानी बात है कि मनुष्य जाति में नारी-स्वर पुरुष-स्वर की अपेक्षा अधिक उच्च तारयुक्त या आवृत्तिवाला होता है। इसके अतिरिक्त नारी-स्वर अप्रशिक्षण और अपरिष्कार की स्थिति में भी पुरुष की तुलना में अधिक मधुर होता है।

पर यह विचित्र बात है कि पक्षी एवं कीट-पतंग आदि निम्नतर वर्गों में सत्य ठीक इसके विपरीत है। भ्रमर की आवाज़ भ्रमरी की अपेक्षा अधिक उच्च तारवाली है। यह अधिक मनोहर और मधुर भी है। मयूरजाति में, यह मोर है, मोरनी नहीं, जिसके पंख इतने सुंदर और सजावटी होते हैं। शायद यह इसलिए ऐसा है कि इन निम्नतर जातियों में यह नर है जिसे मादा को आकर्षित करना पड़ता है।

भ्रामरी प्राणायाम में दो स्थितियां होती हैं :

अ. प्रश्वसन के दौरान उत्पन्न ध्वनि भ्रमरी की तरह होती है—उच्चता और आवृत्ति में मंद्र और नीची।

ब. श्वसन के समय उत्पन्न ध्वनि भ्रमर की तरह होती है—तारत्व और आवृत्ति में उच्च।

इन दोनों के बीच स्वाभाविक कुम्भक।

इस प्राणायाम का मन पर सुंदर शांत प्रभाव होता है, जो मन को लय अथवा विलयन में ले जाता है और तब समाधि तक।

भ्रामरी में अवस्थाएं

भ्रामरी का निरन्तर अभ्यास न केवल सुंदर त्रि-विमीय अभिज्ञा में ले जाता है, बल्कि चेतना की सूक्ष्म और उच्चतर स्थितियां भी प्रदान करता है। भ्रामरी के अभ्यास से अनेक आन्तरिक अनुभव प्राप्त होते हैं।

घेरण्ड संहिता के पञ्चमोपदेश में इस प्राणायाम के अभ्यास और अनुभवों का विस्तृत विवरण 'भ्रामरीकुम्भक' शीर्षक के अन्तर्गत इस प्रकार दिया गया है :

अर्धरात्रे गते योगी जन्तूनां शब्दवर्जिते।
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात् पूरककुम्भकम् ॥७८॥

आधी रात व्यतीत होने के बाद, जहां किसी भी पशु का कोई शब्द सुनाई न दे, ऐसे स्थान पर, योगी को हाथों से दोनों कान बंद करके पूरक और कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए।

मेघझर्झरभ्रमरी घण्टाकांस्यं ततः परम् ।
तुरीभेरीमृदङ्गदिनिनादानकदुन्दुभिः ॥८०॥

इस अभ्यास से उसे अपने दायें कान में अनेक सुन्दर आन्तरिक नाद सुनाई देंगे। पहले उसे झींगुर का, तब वंशी का नाद सुनाई देगा। इसके पश्चात् मेघ-गर्जन, ढोल, भृंग एवं घण्टों का नाद, तथा तुरही, भेरी, मृदंग, दुन्दुभि आदि का नाद सुनाई देगा।

एवं नानाविधो नादो जायते नित्यमभ्यासात् ।
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ॥८१॥
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
एवं भ्रामरीसंसिद्धिः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ॥८२॥

इस प्रकार इस प्राणायाम के नित्य अभ्यास से अनेक ध्वनियां उत्पन्न होती हैं। सबसे अंत में हृदय से उठती हुई **अनाहत ध्वनि** सुनाई देती है। इस ध्वनि या शब्द में एक **अनुनाद** होता है, और इस अनुनाद में **ज्योति** होती है। इस ज्योति में मन लय हो जाना चाहिए। जब मन विलय स्थिति को प्राप्त करता है, तब वह विष्णु के परम पद को पहुंच जाता है। इस **भ्रामरी प्राणायाम** के सिद्ध हो जाने पर समाधिसिद्धि की प्राप्ति होती है।

इस सारे विवरण से हम समझ सकते हैं कि भ्रामरी प्राणायाम से चेतना की सूक्ष्मतर स्थितियां प्रकट होती हैं, जैसे

- अनेक प्रकार की अन्तर ध्वनियोंका श्रवण
- अत्यन्त सूक्ष्म कम्पनों से अभिलक्षित सूक्ष्मतर ध्वनियां
- विविध अन्तर-दर्शन
- ज्योति दर्शन
- मन के नानाविध स्तरों का ज्ञान
- त्रिपुटी (द्रष्टा, दर्शन और दृश्य; ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय आदि) के लोप से मन का लय और समाधि।

इस प्रकार भ्रामरी का अन्तिम लक्ष्य वस्तुतः समाधि है जो पतंजलि के अष्टांग योग का अन्तिम अंग है।

लाभ

शारीरिक : भ्रामरी समस्थापन की पुनर्प्रतिष्ठा के द्वारा तंत्रिका तंत्र को शान्त उपशमित करती है तथा आवृत्ति की शृंखला में वृद्धि करके स्वर और लय का संस्कार करती है। आवाज़ सुरीली और मधुर हो जाती है।

चिकित्सीय : भ्रामरी मनोकायिक लगभग सभी रोगों में अत्यन्त उपयोगी और लाभप्रद है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि यह तनाव और दबाव को और उससे सम्बन्धित सभी प्रकार के असन्तुलनों को कम करती है और विशेष रूप से गले की समस्याओं—गल-शोथ, गल-तुण्डिका, गले में दर्द आदि में फायदा पहुंचाती है।

आध्यात्मिक : भ्रामरी की भिन्न स्थितियां इस बात की परिचायक हैं कि यह प्राणायाम आध्यात्मिक प्रगति के लिए अत्यन्त लाभदायक है। **त्रि-विमीय अभिज्ञा के विकास से पूरे शरीर का अनुभव प्राप्त होता है।** भ्रामरी पूर्ण होने के बाद अनुनाद अधिक और अधिक बना रहता है और हम शरीर में तथा शरीर के पार वातावरण में भी कम्पनों को अनुभव कर सकते हैं। धीरे-धीरे, अभिज्ञा शरीर से परे विस्तृत होकर सर्वव्यापी अभिज्ञा का रूप ले लेती है।

भ्रामरी प्राणायाम किसी भी समय किसी भी स्थान पर किया जा सकता है। इसके अभ्यास में किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है। बीमारी की स्थिति में भी बिस्तर पर लेटकर भ्रामरी को किया जा सकता है। जब ध्वनि की पुनरावृत्ति हर बार अधिक लयतानयुक्त हो जाये, अधिक मृदु और मधुर हो जाये तथा उसकी अवधि दीर्घतर होती चली जाये, तब समझना चाहिए कि भ्रामरी में प्रगति हुई है। दिन में कई बार अभ्यास के रूप में जैसे-जैसे अनुसंधान बढ़ता है, अभिज्ञा विस्तृत होती है और तनावमुक्त रहकर कर्म करने की कला हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है।

मूर्च्छा प्राणायाम

मूर्च्छा एक प्रकार की **बेसुधी** या **आत्मविस्मृत स्थिति** है। इस प्राणायाम के द्वारा मन ऐसी शान्त या सुप्त स्थिति को प्राप्त करता है कि वह मूर्च्छा जैसी प्रतीत होती है।

इस प्राणायाम में प्रगति और विकास के द्वारा हमारी अभिज्ञा शारीरिक बोध से परे विस्तृत हो जाती है; **त्रि-विमीय अभिज्ञा** से **सर्वव्यापी अभिज्ञा** की प्राप्ति होती है। अभिज्ञा शरीर की भौतिक सीमाओं से बंधी नहीं रहती। जैसे-जैसे अभिज्ञा का विस्तार होता है, शरीर-बोध कम से कमतर होता चला जाता है और उस बिन्दु तक आ जाता है जब शरीर-बोध रहता ही नहीं और अभिज्ञा सीमाओं के पार विस्तृत हो जाती है।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।। पतंजलि यो० सू० २.५२।।

प्राणायाम से प्रकाश को अच्छादित करनेवाला आवरण दूर हो जाता है।

यह पारगामी अभिज्ञा शरीर-अभिज्ञा या त्रि-विमीय अभिज्ञा का अतिक्रमण करती है।

हमने देखा कि अभ्यास की उच्चतर स्थितियों में भ्रामरी किस प्रकार हमें सर्वव्यापी

अभिज्ञा तक ले जाती है। यहां हम प्रस्तुत कर रहे हैं **घेरण्ड संहिता** से मूर्च्छा प्राणायाम या मूर्च्छा कुम्भक :

सुखेन कुम्भकं कृत्वा मनश्च भ्रुवोरन्तरम् ।
संत्यज्य विषयान् सर्वान् मनोमूर्च्छा सुखप्रदा ।
आत्मनि मनसो योगादानन्दो जायते ध्रुवम् ।।५.८३।।

सुखपूर्वक कुम्भक करके, मन को सब विषयों से अलग कर दोनों भौंहों के बीच के शून्य में एकाग्र करना चाहिए। इससे मन सुखप्रद मूर्च्छित स्थिति को प्राप्त करता है। मन आत्मा के साथ संयुक्त हो जाता है और निश्चित रूप से आनन्द की प्राप्ति होती है।

हठयोग प्रदीपिका (२.६९) के अनुसार भी यह प्राणायाम मन को निस्पन्द करता है और सुखदायी है। मूर्च्छा का एक और अर्थ भी है विस्तृत करना, व्याप्त होना। यह प्राणशक्ति का संग्रह भी करता है।

प्रणाली

- स्थिति ग्रहण कीजिए।
- धीरे-धीरे श्वास लीजिए और केवल कुम्भक में श्वास को निरायास ठहर जाने दीजिए।
- दोनों भौंहों के बीच में मन को सहज केन्द्रित हो जाने दीजिए।
- श्वास को सहज स्वाभाविक रूप से छोड़ते हुए द्वितीय केवल कुम्भक तक ले आइये।
- मन को इस बिन्दु पर ठहरा कर पूरी प्रक्रिया का आनन्द लीजिए।

शरीर-बोध समाप्त होने पर मन खुलकर विशालता को प्राप्त करता है। केवल कुम्भक जितना दीर्घ होगा, मूर्च्छा की गहराई और विस्तार उतना ही बड़ा होगा।

यह प्राणायाम **सुख प्राणायाम** या **दीर्घ श्वसन** की भांति सरल और स्वाभाविक है तथा महान् फलदायक है।

अध्याय १०

प्राणानुसंधान

मानव-स्तर पर प्राण का प्राकट्य **मन** है, और चंचलता, निरुद्देश्यता, अनियंत्रित ऊर्जाशक्ति की अत्यधिक हलचल, और वेग से उत्पन्न होनेवाले स्नायुरोग के रूप में असन्तुलनों को प्रकट करता है। सामान्य अर्थ में यह **आधि** है, एक ऐसा दबाव जो आधुनिक युग की तमाम मनोकायिक समस्याओं को जन्म देता है।

मनोवृत्तियां, जो ऊर्जा से आपूर्ण मन की तीव्र अभिव्यक्तियां हैं, पूरे शरीर में द्विविध प्रक्रिया के द्वारा प्रतिक्रियाओं को प्रवर्तित करती हैं, सहानुकम्पी एवं परानुकम्पी तंत्रिका असंतुलन (वैद्युत सक्रियता) प्रक्रिया और अन्तःस्रावी असन्तुलन (रासायनिक सक्रियता)। प्रक्रिया के द्वारा दीर्घकाल से चले आये भावात्मक ज्वारों को विकृत और विरूपित व्यक्तित्वों के रूप में देखा जा सकता है। भावों के ये चढ़ाव गहरे अवसाद तक भी ले जाते हैं।

बुद्धि प्राण की उच्चतर अभिव्यक्ति है। यह विवेक और विश्लेषणात्मक शक्ति है, जिसका उपयोग हम दोषपूर्ण विचारों और मनोभावों को संशोधित करने में करते हैं। पर, असत् और भ्रांतिपूर्ण विचारों से पूर्ण तीक्ष्ण बुद्धि भी महान् संकट और मनोविक्षिप्तता का कारण बन सकती है।

प्राण पर आधिपत्य प्राप्त करने से मन, बुद्धि और मनोवृत्तियों पर अधिकार प्राप्त होता है। जब तक प्राण अनियंत्रित और असंयमित रहेगा, जीवन में व्यग्रता, भावात्मक उतार-चढ़ावों के चक्र, दुःख-दारिद्र्य और दुर्गति की स्थितियां बनी रहेंगी और हमारा जीवन इनसे बराबर प्रभावित रहेगा। इसलिए प्राणायाम एक ऐसी अनिवार्य और उपयोगी प्रक्रिया है, जिससे हम अपने जीवन की सारी मूलभूत समस्याओं, दुःख-तकलीफों से मुक्ति पा सकते हैं।

श्वसन-सम्बन्धी सारे असंतुलनों की जानकारी वह पहला कदम है जो श्वास पर और इस तरह प्राण पर अधिकार प्राप्त करने की दिशा में आगे ले जाता है। आन्तरिक अवरोधों, संकोचों और दबावों को क्रियाओं के द्वारा स्वच्छ कर लेना चाहिए। इनमें **कपालभाति** बहुत प्रभावशाली क्रिया है। शुद्धिकरण और रुद्धताओं को दूर करने में **अग्निसार क्रिया** भी बहुत उपयोगी है। श्वसन में तेज़ी, झटके, अवरोध और बेतरतीबी को तथा दोषपूर्ण श्वसन की आदतों को **अनुभागीय श्वसन** के अभ्यास से ठीक कर लेना चाहिए।

भस्त्रिका के अभ्यास से प्राणायाम के क्षेत्र में प्रवेश हो जाता है। अगला कदम है संवेदनशीलता को बढ़ाना, दोनों नासाछिद्रों के बीच प्राण-अपान श्वसन में असंतुलनों को पहचानना, इनमें संतुलन स्थापित करना और फिर श्वास में मन्थरता लाना। प्राणायाम का अनुलोम विलोम वर्ग, उज्जायी प्राणायाम तथा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण **नाड़ी शुद्धि** प्राणायाम इस कार्य का निष्पादन करते हैं। इसके पश्चात् अवगम-गहनता की वृद्धि करने

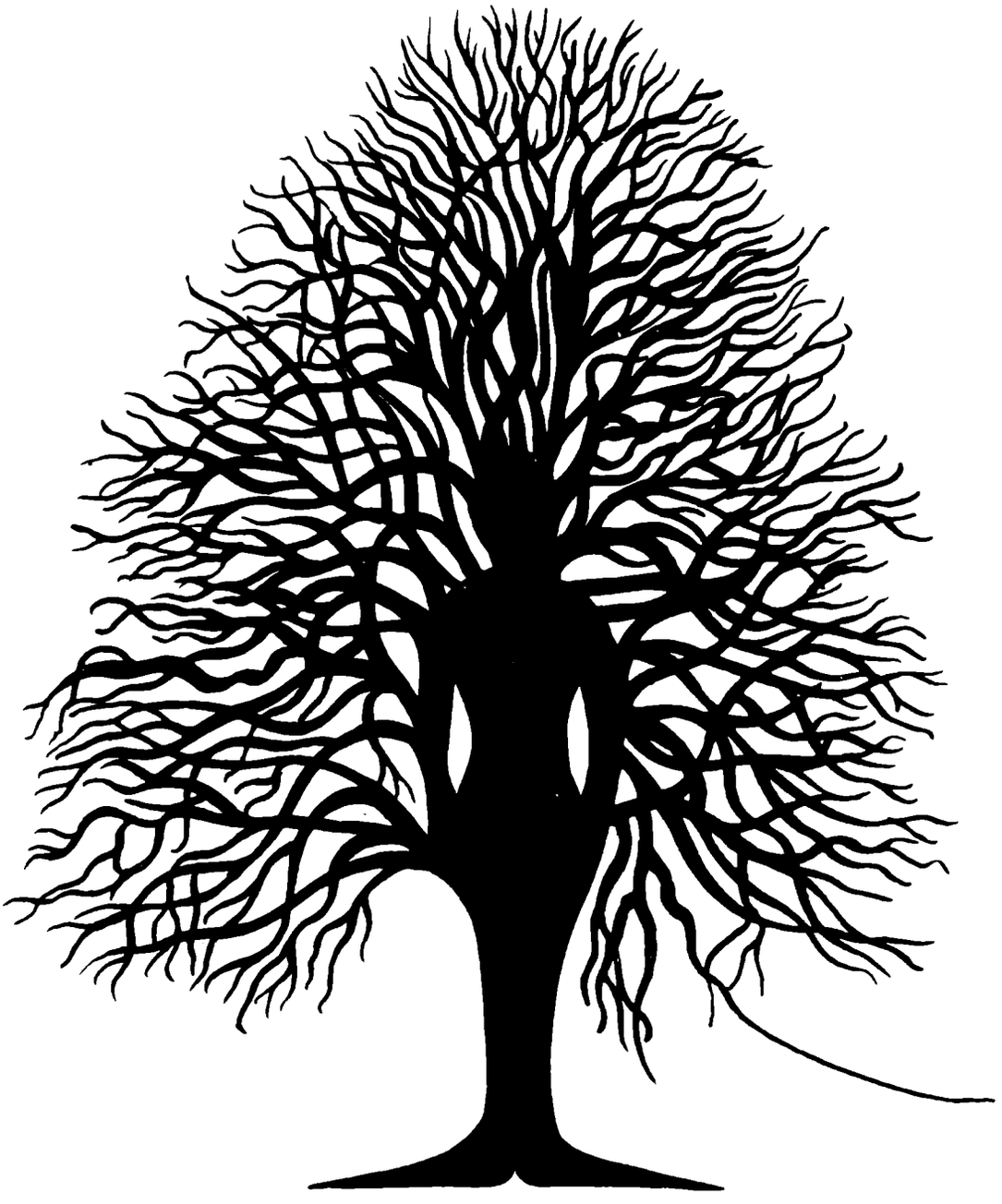

प्राण का आयाम

के लिए सुग्राह्यता या संवेदनशीलता का और अधिक अभ्यास करना चाहिए। जैसे-जैसे संवेदनशीलता बढ़ती जाये, उसके साथ-साथ अभिज्ञा को भी विस्तृत होते जाना चाहिए। अभिज्ञा को बिन्दु, अनुरेखीय एवं सतही अभिज्ञा के रूप में विस्तार प्राप्त करना चाहिए। **भ्रामरी प्राणायाम** ध्वनि के माध्यम से अभिज्ञा का विस्तार त्रि-विमीय तक करता है। **मूर्च्छा प्राणायाम** हमें सर्वव्यापी अभिज्ञा तक ले जा सकता है। और अन्त में प्राप्त होता है **नीरवता** का वह स्थल जो संपूर्ण आनन्द, ज्ञान, सृजनात्मकता एवं स्वातंत्र्य का धाम है। प्राणायाम के प्रारम्भिक शिक्षा-क्रम में इन सबका समावेश किया गया है। हज़ारों लोग इन शिक्षा-क्रमों में दिये गये अभ्यासों का उपयोग करते हैं और अत्यन्त लाभान्वित होकर जाते हैं। स्वास्थ्य-सम्बन्धी संकट कम हो जाते हैं, जीवन की गुणवत्ता में सुधार आता है, जीवन को समग्रता से जीने की कला में प्रगति होती है। इन सबका आधार है आनन्द और शांति, स्वास्थ्य और सामंजस्य और संतुलन एवं कार्य-कुशलता।

प्राणायाम का अभ्यास केवल सुबह और शाम के आधे या एक घंटे तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसे पूरे दिन के अन्दर, समय के हर क्षण में फैल जाना चाहिए। बीच-बीच में अपने श्वसन को जांचते रहना चाहिए, क्या वेग है, कौन-सा नासाछिद्र खुला है और श्वास का प्रवाह निर्बाध आ-जा रहा है या नहीं। कहीं कोई त्रुटि होने पर उसे ठीक कर लेना चाहिए। सारे शरीर में प्राण की गति का अनुभव करना चाहिए और सुन्दर नील आकाश के दर्शन को अपनी स्मृति में लाकर सर्वव्यापी अभिज्ञा को विकसित करना चाहिए।

आरंभ करने के लिए दिन के ये समय **अभिज्ञा अभ्यास** के अधिक अनुकूल हैं :

- प्रातःकाल उठने पर।
- योगाभ्यास के सुबह के घंटों में।
- स्नान करते समय।
- नाश्ता करने से पहले।
- भोजन से पूर्व।
- अपराह्न चाय से पहले।
- शाम को काम से लौटने पर।
- सायंकालीन भोजन से पूर्व।
- रात को सोने से पहले।

अभ्यास के आरंभ के दिनों में, हर रोज़ रात को सोने से पहले डायरी लिखना बहुत अच्छा है। इससे इस बात की समीक्षा हो सकेगी कि कितनी बार आपने श्वसन का परीक्षण किया, उसका संशोधन किया, अभिज्ञा का विस्तार और अवगम-गहनता में सफलता प्राप्त की।

दो से चार सप्ताह के अनन्तर आप पायेंगे कि श्वसन अभिज्ञा सतत रहने लगी है। कर्म के समय भी **अभिज्ञा** और **विस्तार** को बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए। आपको अनुभव होगा कि आपकी कार्यक्षमता में दिन प्रतिदिन आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही

है। सप्ताहों, महीनों और वर्षों के अभ्यास ने आपको हर क्षेत्र में कहीं का कहीं पहुंचा दिया है।

प्रगति के चिह्न

प्रगति का सबसे बड़ा चिह्न है मूल मनोवृत्तियों की प्रबलता और प्रवेगों में न्यूनता। विशेष रूप से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि षड् रिपुओं के प्रभाव में कमी। आप इन मनोवृत्तियों के दास न रहकर इनपर प्रभुत्व प्राप्त करते हैं। दबाव की न्यूनता को स्पष्ट देखा जा सकता है। उद्यम, ऊर्जा, स्फूर्ति, प्रेम, करुणा, आनन्द, शांति, सामंजस्य, सेवा-भावना आदि सद्गुणों का स्वाभाविक विकास होता है। स्वास्थ्य और आरोग्य की प्राप्ति होती है और जीवन की गुणवत्ता में सुस्पष्ट उन्नति को लक्ष्य किया जा सकता है।

प्राणायाम का अभ्यास करनेवालों में **स्मृति** और **बुद्धि-लब्धि, सृजनशीलता में वृद्धि** को बड़े स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

श्रीअरविन्द ने भारत लौटने के बाद अपने बड़ौदा निवास के दौरान योग का अभ्यास आरंभ किया था। कुछ समय के लिए यह केवल प्राणायाम तक ही सीमित रहा। सुबह और शाम को लंबे समय तक प्राणायाम करने का प्रभाव यह हुआ कि मन एक अद्भुत प्रकाशमयी स्थिति में आ गया, एक नीरव, शांत, प्रकाशमयी स्थिति में, और इनसे उनकी कविता को अभूतपूर्व प्रवाह मिला। पहले वे दिन में कविता की मुश्किल से ही दस पंक्तियां लिख पाते थे, पर अब कविता जैसे बाढ़ की तरह उमड़ती थी और वे एक घंटे से भी कम समय में लगभग दो सौ पंक्तियां लिख लेते थे। उनका स्वास्थ्य सुधर गया, स्मृति प्रखर हो गयी और उन्होंने विशद दर्शन एवं ऊर्जा का अनुभव किया। बाद में उन्होंने संपूर्ण इंगलिश साहित्य के विशालतम महाकाव्य 'सावित्री' की रचना की।

अनुसंधानों के परिशीलन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्राणायाम से स्वायत्त स्थायित्व में वृद्धि हो सकती है और मस्तिष्क की क्रियाओं में सामंजस्य लाया जा सकता है।

जब अन्तर-शांति, आनन्द और प्रशमन, दर्शन और दृष्टिकोण में विशालता और अभिज्ञा के विस्तार आदि का उदय होता है, तब सेवा-भावना, सबके प्रति प्रेम, राष्ट्रीय जागृति, सारी सृष्टि के प्रति करुणा-भाव स्वाभाविक ही प्रकट होने लगते हैं। छोटा और क्षुद्र, अहंमन्यतापूर्ण व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न हो जाता है। हम स्वातन्त्र्य और विस्तार की तरफ बढ़ते हैं।

जब हम प्राण को उसके उच्चतम और सूक्ष्मतम रूप में जान लेंगे, प्राणायाम के माध्यम से इस **आदि प्राण तत्त्व** का ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लेंगे, तब हम अपनी मानवीय सीमाओं के पार अतिमानवीय चेतना-स्तरों का स्पर्श कर सकेंगे। योगियों के जीवन-वृत्त इस बात के साक्षी हैं कि प्राणायाम का अभ्यास अथवा प्राण-साधना मनुष्य को दिव्य और पूर्ण बना सकती है और इसके द्वारा वह परम सत्य के साथ तादात्म्य प्राप्त कर सकता है।

पारिभाषिक शब्द-क्रम

अणु	molecules
अंतड़ियां	viscera
अधश्चेतक	hypothalamus
अनवरुद्धता	patency
अनिश्चितता सिद्धान्त	uncertainty principle
अनुकम्पी	sympathetic
अनुनाद	resonance
अनुभागीय श्वसन	sectional breathing
अनुरेखीय अभिज्ञा	lenear awareness
अनैच्छिक	involuntary
अन्तर वक्षीय	intra-thoracis
अन्त्य	end
अन्तःस्रावी	endocrine
अन्तरापर्शुक	intercostal
अन्तराशिरीय	intercostal
अपचयक	catabolic
अपवाही	efferent
अभिज्ञा	awareness
अभिवाही	afferent
अम्ल	acidity
अवगम	perception
अवगम-गहनता	depth of perception
असमान्त	ending
आक्सीकरण	oxydation
आक्सीजनित रुधिर	oxygenated blood
आघात	stroke
आधारी	basal
आधारी उपपाचन दर	basal metabolic rate *BMR*
आन्त्र	intestine
आमाशयी आन्त्र पथ	gastric intestinal tract GIT
आयाम (विमा)	dimension
आवर्तन	rhythm
आवृत्ति	frequency
आस्तर	lining

उत्पाद	product
उदग्र	vertical
उदर	abdomen
उपचयक	anabolic
उपापचयी	metabolic
उरोस्थि	sternum
ऊतक	tissue
ऊष्मांक	calory
कंठ	larynx, laryngeal
कंठग्रंथि	adenoid
कंठच्छद	epiglottis
कंठ्य, गल	jugular
कंठ्-द्वार	glottis
कार्यकर (प्रभावित्र)	effector
किरीटी	corona
कूपिका, वायु कोश	alveoli, air sac
कोटर	sinus
कोशाणु, कोशिका	cell
कोशिका	cappillar
खांचा	notch
गति (वेग)	motion (speed)
गतिकी, गतिविज्ञान	dynamics
गलतुण्डिका	tonsils
गहनता	depth
ग्रन्थि	gland, glandular
ग्रसनी	pharynx
ग्रासनली	oesophagus
ग्राही कोशिका	receptor
घर्षण	friction
घ्राण	olfactory
चक्र	round
चाप	arc
चुम्बक जीव विज्ञान	magneto biology
जत्रुक (हंसली)	clavicle, clavicular
जठर शोथ	gastritis
जवमापी	tacheons

जालक	plexi
जैव वैद्युत अभिलेखन	blo-electrography
तन्तु	filament
तंत्रिका रासायनिक	neurochemical
तंत्रि विज्ञान	neuroscience
तंत्री	nerve
तरल	fluid
तापांतर	temperature differntial
दरार	fissure
दक्षिणावर्त	clockwise
दाहक आंत संलक्षण	irritable bowel syndrome
दिक काल सांतत्यक	space time continum
दोलन	oscillation
द्विशाखीय	bifurcation
द्रव्यमान	mass, m
धमनी	artery
ध्वनि, नाद	sound
नव वल्कुट	neo cortex
निश्चयवाद	determinism
पट	septum
पत्ती का छायाभास	phantom leaf effect
परमाणु	atom
परानुकम्पी	parasympathetic
परिघटना	phenomenon
परिसंचरण	circulation
परिसंचरण-तंत्र	circulation system
पक्ष्माभ (रोमल)	cilia
पाली	lobe
पाश	loop
पिण्डिका (अंश)	lobe
पूर्वोपाय	precaution
प्रघाण	vestibule
प्रतिदक्षिणावर्त	anti-clockwise
प्रतिरक्षक	immune
प्रतिवर्त	reflex
प्रत्यूर्जता	allergy

प्रमात्रा	quantum
प्रश्वसन	exhalation
प्रायिकतात्मक	probabilistic
प्रेरक	motor
प्रेक्षण	observation
फुप्फुस धमनी	pulmonary artery
फुप्फुसावरण	pleura
बल	force
बिम्ब विसर्पण	slip disc
बुद्धिलब्धि	intelligence quotient IQ
भौतिक तत्त्व, द्रव्य	matter
मध्यपट	diaphragm
मध्यपटीय श्वसन	diaphragmatic breathing
मध्यांश दीर्घायत (मेडुला ऑब्लांगेटा)	medulla oblongata
मलाशय	rectum
मानकीकरण	standardisation
यंत्रविज्ञान	mechanics
रासायनिक	chemical
रीढ़ रज्जु	spinal cord
लसीका	lymphatic
वल्कुट	cortex
वक्षीय पंजर	thoracis cage
वाक् यंत्र	voice box
वायुकोश	air sac
विआक्सीजनित रुधिर	deoxygenated blood
विघटनाभिक	radio active
विचलित नासा पट	deviated nasal septum
विद्युत मस्तिष्क अभिलेख	electroencephalogram EEG
विभेदी वाष्पीकरण	differntial evaporation
विमा, आयाम	dimension
विमीय	dimensional
विलय	merge
वेग	velocity, force
व्यास	calibre
शरीरक्रियात्मक	physiological
शारीर	anatomy

शारीरीय	anatomical
शिखर	apex
श्लेष्मल झिल्ली	mucous membrane
श्लेष्मिका	mucosa
श्वसन	inhalation, breathing
श्वसनी	bronchi
श्वसनी दमा	bronchial asthma
श्वसनी शोथ	bronchiole
सतही अभिज्ञा	surface awareness
संकेन्द्रण	concentration, focussing
संरचना	structure
संरचक (पट)	fabric
सममित	symmetrical
समोच्च रेखा	contour
समस्थापन	homeostasis
सांस की नली	trachea
सिद्धान्तिक कण समूह	tacheons
स्थानिक अरक्तता हृदय-रोग	ischaemic heart disease
स्नेहक स्तर	lubricating layer
स्पन्दन दर	heart rate
स्वचलीकरण	automatisation
स्वर तन्तु	vocal chord
स्वाद कलिकाएं	taste buds
स्वायत्त तंत्रिका तंत्र	autonomic nervous system
स्वायत्त स्थायित्व	autonomic stability
स्वैच्छिक	voluntary
क्षेत्र	spectrum

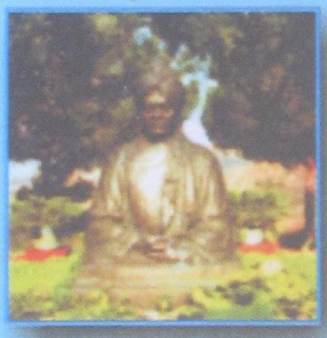

'विवेकानन्द केंद्र योग अनुसंधान' संस्थान के तवत्तवावधान में आप अभि तक योगविषयक आनेक शीर्षकों को पढ़ते रहे हैं। पुस्तकें **विधा** के प्रचार-प्रसार का सशक्त माध्यम होती हैं - इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए हमने **योगविधा** की लोकप्रियता के लिए **'विवेकानन्द केन्द्र योग प्रकाशन'** की स्थापन की है, ताकि एक स्वतंत्र कार्य के रुप में इसपर बल दिया जा सके और इसे **सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय** जन-जन तक पहुंचाया जा सके। जिन शीर्षकों से आप परिचित रहे है। उनका पुनर्प्रकाशन प्रस्तुत योग **प्रकाशन** के अन्तर्गत होगा। साथ, योगविधा के व्यापक क्षेत्र को समाविष्ट करन्वाले विविध विषयों पर पुस्तकों को प्रकाशित किया जायेगा।

समग्र जीवन ही योग है – इस सत्य को चरितार्थ करने की दिशा में हम साहित्य, कला, विज्ञान के उन पक्षों को भी अपनी सुची में साम्मिलित करेंगे, जो जीवन को पूर्णता प्रधान करते हैं।

ISBN-81-87313-01-3